मनोरंजन पुस्तकमाला-२६

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

जर्मनी का विकास

पहला भाग

लेखक

सूर्यकुमार वर्मा

१९१८

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस में मुद्रित ।

मूल्य १)

परिचय।

बर्तमान यूरोपीय महायुद्ध के कारण सारे संसार की आँखें जर्मनी की ओर लगी हुई हैं। उसने युद्ध के अखाड़े में उतर कर सारे संसार को युद्ध के लिये निमंत्रित किया है। संसार के जितने विशाल राष्ट्र हैं वे तो एक ओर हैं और अकेला जर्मनी एक ओर। जर्मनी के दो एक साथी हैं, वे भी सब उसी के बल पर कूदते हैं। अतएव बहुत से लोग जर्मन राज्य के संगठन और उसकी उन्नति का इतिहास जानने की इच्छा रखते हैं। इसी कारण इस पुस्तक में प्रायः वेही बातें बताई गई हैं जिनसे जर्मनी के विकास का पता चले। इस पुस्तक का मुख्य विषय तो जर्मनी के व्यवसाय वाणिज्य का विकास है। पुस्तक का बहुत बड़ा भाग इसी विषय ने घेर लिया है। पचास वर्ष, में जर्मनी ने अपना किस प्रकार रूपांतर कर लिया और अपने व्यवसाय वाणिज्य से संसार को किस प्रकार चकित और स्तंभित कर दिया; ये सब बातें, इस पुस्तक में खूब अच्छी तरह समझाई गई हैं। परंतु वाणिज्य व्यवसाय के सामने उसने कृषि, शिक्षा, समाज आदि की उन्नति की ओर ध्यान न दिया हो, यह बात नहीं है। जर्मनों ने अपनी उन्नति की सब बातों पर समान ध्यान रक्खा। जर्मनी का यह रूपांतर और खास कर सांपत्तिक रूपांतर, किस प्रकार होता गया, यह बात इस

पुस्तक को पढ़ने से पाठकों के ध्यान में अवश्य आ जाना चाहिए। व्यापार में यश प्राप्त करने के लिये जर्मनी ने कितने प्रयत्न किए और किस परिश्रम और उत्साह से उसने अपना कार्य संपादन किया, ये सब बातें पाठकों को इस पुस्तक में मिलेंगी। जर्मनी ने जो औद्योगिक उन्नति की, उसका रहस्य समझने में इस पुस्तक से सहायता मिलेगी। जर्मनी का विकास किसी गुप्त मार्ग से हुआ हो, यह बात नहीं है। उसने जिस मार्ग और जिन उपायों का अवलंबन किया, वे मार्ग और उपाय सब के लिये खुले हुए हैं। जो चाहे वह उन्हें ग्रहण कर सकता है। संसार के बाजार में जो अग्रस्थान जर्मनी ने प्राप्त किया है उसका कारण शास्त्र, शिक्षा और दीर्घ उद्योगों के सिवाय और कुछ नहीं है। जिन राष्ट्रों ने इन बातों की ओर दुर्लक्ष्य किया उन्हींको यह अलभ्य लाभ प्राप्त नहीं हुआ। छोटे बड़े सब कामों की ओर बराबर ध्यान रखने से ही कार्यसिद्धि होती है। यह मंत्र जर्मन लोगों से सीखने योग्य है।

हमारा देश व्यवसाय वाणिज्य में बहुत पीछे है। शिक्षा का प्रचार भी यहां उतना नहीं हुआ है जितना होना चाहिए। कलाकौशल में भी हम लोग बहुत गिरे हुए हैं पर इन सब बातों को प्राप्त कर लेना कुछ कठिन नहीं है, यदि हम उचित मार्ग को ढूँढकर उसपर बराबर प्रयत्न करते आगे बढ़ते जाँय। जर्मन लोगों को तो सारे प्रयत्न स्वतः करने पड़े थे और हमें तो सहायता देने के लिये स्वयं ब्रिटिश सरकार और भारत की देशी रियासतें हैं जहां पर यह प्रयत्न बराबर जारी है कि

उस समय इस वर्त्तमान युद्ध का विचार भी लोगों में न था। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण, सन् १९०९ में, तीसरा १९११ में और चौथा १९१४ में हुआ। इस पुस्तक के विषय में "नेशन" पत्र ने लिखा है—"It is by a long way the most important and exhaustive analysis of the economic situation in Germany which has appeared in England for everal years past." डासन महोदय की इस पुस्तक को इंग्लैंड में भी प्रमाण के स्वरूप में माना जाता है। आपने जो बात इस पुस्तक में कही है वह प्रमाण सहित कही है। आपने इंग्लैंड के व्यवसायियों और वाणिज्य-प्रिय लोगों के सामने वे बातें रक्खी हैं जिनका अनुकरण करने से इंग्लैंड भी जर्मनी के समान व्यवसाय वाणिज्य में उच्च स्थान पा सकता है, और साथ ही वे दूषण भी आपने बता दिए हैं जिनसे सदा दूर ही रहना चाहिए क्योंकि उन दूषणों के कारण जर्मनी के पतन का भय स्वयं जर्मनी को लगा हुआ है।

मि० डासन ने जहां जर्मनी के कार्यों की प्रशंसा की है वहीं उसकी त्रुटियों को बताने में भी आपने संकोच नहीं किया है। यह पुस्तक न तो जर्मनों की प्रशंसा से ही भरी हुई है और न निंदा से ही। उसके जिन कार्यों में उन्हें भूल मालूम हुई है, उनका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने कर दिया है, और जहां कहीं उन्हें किसी कार्य में विशेष गुण दिखाई पड़े हैं उन्हें बताने में भी आपने किसी प्रकार का

आगा पीछा नहीं किया है। इस गुण के होने के कारण यह पुस्तक और भी उपयोगी समझी जाती है।

जिस प्रकार मि० डासन ने अपने देशवासियों को उपदेश दिया है कि वे अपने पूर्वजों की ओर ध्यान करके कि उन्होंने वाणिज्य व्यवसाय में किस प्रकार यश संपादन किया था, पुनः प्रयत्न करें, उसी प्रकार हमारा भी अपने पाठकों से यही निवेदन है कि वे भी अपने देश के व्यवसाय वाणिज्य के आरंभिक युग में घबड़ा कर उसे छोड़ न दें। व्यवसाय वाणिज्य की असफलता भी एक शिक्षा है अथवा यों कहें कि यह सफलता की एक कुंजी है जिसके प्राप्त हो जाने से इष्ट कार्य भी समय पाकर सफल हो जाता है।

इस पुस्तक के अनुवाद करने का भाव हमारे हृदय में इसीलिये उठा कि इस समय देश में व्यवसाय वाणिज्य के विचार की तरंगें उठ रही हैं। युद्ध के कारण विदेशी माल के आने में रुकावट होने से जो कष्ट लोगों को हो रहे हैं उनका अनुभव यहाँ की प्रजा और ब्रिटिश गवर्नमेंट दोनों को हो रहा है और इसीलिये ब्रिटिश गवर्नमेंट ने कृपा कर एक औद्योगिक कमीशन भी बैठाया है। ग्वालियर राज्य के अधिपति, हमारे प्रजावत्सल श्रीमान् सेंधिया नरेश भी अपने राज्य में व्यवसाय वाणिज्य, कला कौशल और कृषि की उन्नति के लिये प्रबल प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु यह काम अकेले श्रीमान् अथवा ब्रिटिश गवर्नमेंट के करने का नहीं है। जब तक प्रजा स्वयं इधर ध्यान न दे और इस महत्व के कार्य में अनुराग प्रगट करके हाथ न बटावे तब तक यह

कार्य कठिन है। अकेला मनुष्य अथवा कोई गवर्नमेंट बिना प्रजा की सहायता के यह काम कभी नहीं कर सकती। यह काम सारे देश का है। अतएव सारे देश को इस काम में लगना चाहिए।

इस पुस्तक को पढ़कर हमारे देशवासी जान सकेंगे कि जर्मन सरकार और जर्मन लोगों ने मिलकर अपने देश में वाणिज्य-व्यवसाय, कलाकौशल, कृषि और शिक्षा की किन उपायों से उन्नति की। हम अपनी तुलना जर्मन देश से नहीं करते और न हम यही कहते हैं कि जैसी स्थिति जर्मनों की थी वैसी स्थिति इस समय ब्रिटिश भारत अथवा देशी राज्यों की है। परंतु किसी उन्नतिशाली देश की दशा जानकर घुणाक्षरी न्याय के अनुसार यदि कोई ऐसी बात हमारे पाठकों के ध्यान में आ जाय जिससे, यहां भी उपरोक्त विषयों के उन्नति संबंधी विचारों का विकास हो या केवल लोगों की रुचि इस ओर उत्पन्न हो तो हम समझ जांयगे कि हमारा प्रयत्न कुछ न कुछ अवश्य सफल हुआ और तब हम भी अपना प्रयत्न और परिश्रम सार्थक समझेंगे।

पुस्तक के अनुवाद का कार्य आरंभ करने के पश्चात् हमें पता चला कि इस पुस्तक का मराठी अनुवाद होगया है अतएव हमने उसे भी मँगाकर पढ़ा। यह अनुवाद श्रीयुत नारायण कृष्ण आगाशे बी० ए०, एल० एल० बी० हाईकोर्ट वकील, सातारा ने किया है। हमें इस मराठी अनुवाद से भी अपने अनुवाद करने में बहुत सहायता मिली, जिसके लिये हम आगाशे महोदय के कृतज्ञ हैं। यदि यह सहायता

हमें न मिलती तो इतनी जल्दी, इतनी बड़ी अंगरेजी पुस्तक का अनुवाद सरलता के साथ करके हम अपने पाठकों की भेंट न कर सकते। जर्मन स्थानों, नदियों, प्रसिद्ध पुरुषों के नाम आदि जैसे मराठी पुस्तक में दिए हैं वैसे ही हमने भी दे दिए हैं। मूल ग्रंथ की प्रस्तावना का अनुवाद भी आगाशे महाशय ने दे दिया है परंतु हमने उसको अपने इस अनुवाद में देने की आवश्यकता नहीं समझी। हां, हमने उनकी पुस्तक में जर्मनी का जो संक्षिप्त इतिहास दिया हुआ था उसका अनुवाद पाठकों को जर्मनी का हाल समझाने के लिये दे दिया है, क्योंकि जिस देश की सांपत्तिक स्थिति पर हम विचार कर रहे हैं उसका कुछ हाल भी तो जान लेना बहुत जरूरी है। इसीके साथ हमने जर्मनी का एक छोटा सा नकशा भी दे दिया है जिससे पाठकों को जर्मन देश के विभागों अर्थात् प्रांतों या रियासतों का पता चलेगा। बहुत सी छोटी छोटी रियासतें मिल कर ही जर्मन साम्राज्य बना है, अतएव हमने इस पुस्तक में कहीं तो रियासत और कहीं प्रांत (State अथवा Province) जैसा शब्द आया है वैसा ही प्रयोग किया है परंतु ये दोनों शब्द समानार्थवाची हैं और दोनों का मतलब जर्मनी के प्रांतिक विभागों से है।

जन्माष्टमी संवत् १९७४
ग्वालियर

सूर्यकुमार वर्मा।

विषय-सूची ।

जर्मनी का विकास ।

पहला भाग ।

पहला अध्याय ।

नवीन विचारों का उदय ।

गत पचास वर्ष पहले की, यदि जर्मनी की दशा की ओर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट प्रगट होगा कि उस देश के मनुष्यों के मन की गति बिलकुल संकुचित थी, अर्थात अपने देश, अपनी भाषा, अपने आचार विचार, अपना धर्म और अपने तत्त्वज्ञान के चिंतन में वे लीन हो रहे थे। "स्व", अर्थात 'आप या अपना' इसके सिवाय अन्य विषयों की ओर उनका ध्यान ही न था। परंतु गत पचास वर्ष से ही उनकी स्थिति बिलकुल बदल गई है। अपने देश के अतिरिक्त और जो पृथ्वी का भाग है, उस भाग में प्रवेश करके, अपने देश का व्यापार बढ़ाना और अपने देश को सम्पत्तिशाली बनाना चाहिए; इतना ही नहीं, वरन इस साधन की सहायता से, अपना राजकीय महत्व भी अन्य देशों में स्थापित किया जाय; इस प्रकार की भावना उत्पन्न

होने से और उसके अनुरोध से इनके लिये उनका प्रयत्न बराबर जारी है। प्राचीन संकुचित विचारों को त्याग कर अब नए उदार विचारों का उनमें संचार हुआ है। सारे संसार में अपना नाम हो, संसार के बहुत बड़े भाग पर अपना प्रभुत्व हो, विद्या क प्रभाव से नाना प्रकार के यंत्रादिक निर्माण करके, नए नए शास्त्रीय शोध लगा कर, अपना देश सुसपन्न हो, यह बात हर एक जर्मन के मन में समाई हुई है।

इस विचारक्रांति का कारण यदि तलाश किया जाय, तो सौ वर्ष पहले पैदा हुए कॉंट, फिस्टे, गेटी, और शिलर नाम के चार ग्रंथकार संमुख आकर उपस्थित हो जाते हैं। इन चारों ग्रंथकारों ने अपने अपने ढंग पर अपनी लेखनी के प्रभाव से, जर्मन लोगों में नवीन चैतन्यता उत्पन्न कर दी है। नेपोलियन के उग्र प्रताप के कारण, जर्मन लोग, निस्तेज होकर बिलकुल असमर्थ हो गए थे यह बात सच है; परंतु उनकी निस्तेजता को दूर करके, उनमें नवीन भावों और वीरश्री उत्पन्न करने का श्रेय, यदि किसी को दिया जा सकता है तो, इन्हीं चारों ग्रंथकारों को दिया जा सकता है। अपने देश के अभ्युदयार्थ हर एक मनुष्य को आत्मयज्ञ करना ही चाहिए, इन ग्रंथकारों का यह तत्व जब जर्मन लोगों के मन पर जमा, तब नेपोलियन द्वारा बैठाया हुआ मत शनैः शनैः कम होने लगा और लोगों में शौर्य की नवीन लहरें हिलोरें मारने लगीं; और थोड़े दिनों के पश्चात ही उन्हें जो युद्ध करने पड़े उनमें उन्हें यश प्राप्त हुआ। उपरोक्त ग्रंथकारों ने यह एक ही काम नहीं किया, शौर्य के साथ साथ विद्या की रुचि की ओर भी लोगों

को लगाया। यह विद्या की रुचि धीरे धीरे इतनी अधिक बढ़ती गई कि जर्मनी विद्या की जननी कहलाई जाने लगी। अतएव यदि सौ वर्ष पहले की जर्मनी का, आज कल की जर्मनी से मुक़ाबला किया जाय तो प्रगट होगा कि वहाँ बिलकुल नया युग आकर उपस्थित हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का यदि आप इतिहास पढ़ें तो आपको मालूम होगा कि काल्पनिक जगत् में, वे लोग विचरण करते थे और अध्यात्म विचारों में ही लीन रहते थे। परंतु उत्तरार्द्ध का इतिहास अवलोकन करने से एक नवीन भाव दृष्टिगोचर होगा। काल्पनिक जगत् का नाश होकर उसका स्थान ईश्वर-निर्मित दृश्य जगत् ने अब अपने अधिकार में कर लिया है। मनुष्य जाति के सुख के लिये परमेश्वर द्वारा निर्माण की हुई, सार वस्तु क्या है, उसका गुण धर्म क्या है; इसका शोध करने की ओर अब विचारों का स्रोत बह निकला है। इन विचारों को शीघ्र ही परिपक्वता का स्वरूप प्राप्त होकर आधिभौतिक सम्पति में, अग्र पूजा का मान, जर्मनी को प्राप्त हुआ। सौ वर्ष पहले जर्मन लोगों ने भावनाधीन होकर कल्पना जगत् में भी बहुत बड़ा वैभव सम्पादन किया था परंतु इससे उन्हें आर्थिक लाभ बिलकुल न हुआ। अब तो आर्थिक लाभ उन्हें प्राप्त हो रहा है और जो सृष्टि अपनी आँखों के सामने है, उस सृष्टि पर—काल्पनिक जगत् पर नहीं—प्राप्त किया हुआ ध्येय उन्होंने अपनी आँखों के सामने रक्खा है।

सौ वर्ष पहले जर्मन लोगों की स्थिति कैसी थी, इसका वर्णन एक जर्मन ग्रंथकार ने इस प्रकार किया है—" पूर्व

समय में जर्मन लोग गरीब और दुबले थे। संसार के और लोग उनका तिरस्कार करते थे और समय पड़ने पर उन्हें लूट लेते थे। लोग उनके साथ गुलामों के समान बर्ताव करते थे। उनके खेतों में पैठ कर माल को जबर्दस्ती छीन लाते और यदि मौका पड़ जाय तो उन्हें मार भी डालते थे। आत्मसंरक्षणार्थ वे शत्रु से लड़ते झगड़ते भी थे, परंतु लोग अपने साथ ऐसा बर्ताव क्यों करते हैं, इसका कारण जानने का वे कभी उद्योग नहीं करते थे। संसार की संपत्ति अन्य राष्ट्र आपस में बाँट लेते हैं और जर्मन लोगों को पूछते भी नहीं हैं, ऐसा क्यों होता है, यह विचार ही उनके मन में कभी नहीं आया। पेट पालनार्थ जितना उद्योग करना आवश्यक है, उतना करने के पश्चात बाक़ी का समय, अपने घर में शांतिपूर्वक बैठ कर प्राचीन ग्रंथकारों, कवियों और तत्त्ववेत्ताओं के ग्रंथ पढ़ने में, वे व्यतीत करते थे। उन्हीं के साथ आनंदपूर्वक विचरण करना, अथवा दुःखाकुल होकर रोना, बस यही उनकी दिनचर्या थी। तत्त्वज्ञान में मग्न होकर वे अपने शरीर की सुध भी भुला देते थे। मनोराज्य में एक बार जहाँ उन्होंने प्रवेश किया फिर उन्हें अपने सामने संसार में क्या हो रहा है, इसकी चिंता नहीं रहती थी"। इस प्रकार लिख कर फिर वही ग्रंथकार लिखता है—"परंतु अब यह दशा बिलकुल बदल गई है। निरुपयोगी तत्त्वज्ञान को हमने एक किनारे उठा कर रख दिया है। छोटी उमर में हम अपना समय अवश्य नष्ट होने देते हैं, यह सच है; परंतु बड़े होते ही हमें अपना हानि लाभ तुरंत सूझने लगता

है। अब हम नवीन उद्योग में लग गए है। चाहे जितनी कठिनाइयां बीच में आकर पड़ें, हम उनकी कुछ परवाह न करते हुए अपने निश्चित स्थान पर पहुँच जाँयगे, ऐसा हमारा दृढ़ निश्चय हो गया है।"

जर्मन लोग स्वभावतः बड़े उत्साही, उद्योगप्रिय और बुद्धिमान होते हैं। संसार के अन्य भागों में आधिभौतिक सुधार का कार्य जिस शीघ्रता से हो रहा है, उसके सामने वे पीछे रह जाँयगे, यह सम्भव नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही, कल्पना जगत् के बाहर निकल कर, बाह्य जगत् की ओर अधिक ध्यान देने का अंकुर, उनके हृदय में उत्पन्न होने के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे थे। अभी इन अंकुरों को फूटे हुए बहुत वर्ष नहीं हुए हैं तौ भी आज कल जो कुछ देख रहे हैं उस पर से कह सकते हैं कि इतना विस्तृत वृक्ष खड़ा हो जायगा, इसकी कल्पना भी उस समय किसी को न थी। सन् १८७० ई० में जर्मनी ने फ्रांस पर चढ़ाई कर के विजय प्राप्त की थी। यही विजय, उनके अभ्युदय का कारणीभूत हुई। नए नए शास्त्रीय शोध करके व्यापार में अपना एक एक पैर आगे बढ़ाने का आरंभ उसी समय से उन्होंने किया। आज कल, सारे संसार में, उनका व्यापार इतना बढ़ा हुआ है कि उसे देख कर कोई भी मनुष्य चकित हुए बिना न रहेगा। 'जिसके हाथ में व्यापार उसी के घर में संपत्ति,' इस सिद्धांत के अनुसार जर्मन राष्ट्र अब बहुत अधिक संपत्तिशाली हो गया है। कई इतिहासकारों का मत है कि यदि सन् १८७० का युद्ध न होता तो जर्मनी

की जो स्थिति आज कल है वह आने में उसे और अनेक वर्षों तक राह देखनी पड़ती।

इस युद्ध में जर्मनी के अधिकार में बहुत सा देश आ गया। जीते हुए राष्ट्र से लड़ाई के खर्चे की बहुत बड़ी रक़म भी मिली। इस युद्ध में जर्मनी को यह साम्पत्तिक लाभ तो हुआ ही परंतु साथ ही जर्मन लोगों के विचारों में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ और इस विचार-परिवर्तन से उन्हें जो लाभ हुआ वह साम्पत्तिक लाभ की अपेक्षा हज़ारों गुना अधिक था।

इस विचारक्रांति के कारण, औद्योगिक विषयों में जर्मनी का सुधार कैसे हुआ, परदेश से व्यापार करने में किस प्रकार उसे यश प्राप्त हुआ, इन बातों का विचार करने की यहां जरूरत नहीं है; आगे चल कर प्रसंगानुसार इन बातों पर विचार किया जायगा। यहां पर केवल जर्मन लोगों का बर्ताव, व्यवहार और उनका नवीन स्वरूप किस प्रकार का है, इसी का परिचय करा देना आवश्य जान पड़ता है।

जर्मन विद्यार्थियों को जो शिक्षा आज कल दी जाती है वह इन चिह्नों में से एक चिह्न है। जिस शिक्षा की सहायता से, विद्यार्थियों के मन में, भौतिक विषयों की आसक्ति उत्पन्न होती है, उस प्रकार की शिक्षा पाठशालाओं और कालेजों में दिए जाने की ओर जर्मनों का लक्ष्य है। हमारे कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि ऐसी शिक्षा देने का कार्य जर्मनी ने ही आरंभ किया, अन्य राष्ट्रों को ऐसी शिक्षा पहले नहीं मिलती थी और न अब मिलती है; शिक्षा की यह प्रवृत्ति

थोड़ी बहुत अब सर्वत्र है। परंतु आज कल जर्मनी में वह जिस तरह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही है वैसी वह और कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती; हमारे कथन का केवल इतना ही मतलब है। नवीन शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने के पश्चात् पहला हमला जो वहाँ हुआ वह जिमनेशिया (Gymnasia) नाम से प्रसिद्ध माध्यम शिक्षा देनेवाली पाठशालाओं पर हुआ। इस प्रकार की पाठशालाओं को जो उत्तेजना मिलती थी वह कम की जाकर नवीन पद्धति की पाठशालाएँ स्थापित की गई और उनकी संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रशिया की माध्यमिक श्रेणी की पाठशालाओं में आज कल जितनी अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दी जाती है उतनी शिक्षा पहले कभी नहीं मिलती थी। परंतु अंग्रेजी भाषा अच्छी है अथवा उसका साहित्य ऊँचे दर्जे का है, ये भाव उत्पन्न होकर प्रशियन लोगों के मन में अंग्रेजी भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ हो, यह बात नहीं है। जर्मन गवरमेंट ने फ्रेंच भाषा के बजाय अंग्रेजी भाषा सिखाने का प्रस्ताव स्वीकार किया और उस अंग्रेजी भाषा के गौरव बढ़ाने योग्य शब्द मौजूद हैं, यह ठीक है; परंतु वास्तव में वह है शब्दप्रपंच ही। उसमें प्रेम का लेशमात्र नहीं है, यह बात कभी भुलानी नहीं चाहिए। व्यापारी लोगों को अंग्रेजी भाषा की जरूरत है। संसार के किसी देश में जाइए, यदि आप को अंग्रेजी भाषा आती है तो व्यापार में आप को कहीं भी कठिनाई न पड़ेगी। व्यावहारिक दृष्टि से यह बड़ी आसानी है और इसी आसानी की ओर ध्यान देकर जर्मनी

ने अंग्रेजी भाषा को स्वीकार किया है। यह स्वीकार करना प्रेम दृष्टि से नहीं, स्वार्थ दृष्टि से है! व्यवहारोपयोगी शास्त्रों की शिक्षा के लिये प्राशियन सरकार मुक्तहस्त होकर जितना चाहिए उतना धन प्रदान करती है। परंतु तत्त्वज्ञान की शिक्षा देने को दो दाने भी मिलना कठिन होता है। इस विषय में एक ग्रंथकार ने लिखा है—"सृष्टि विज्ञान तथा औपयोगिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान होने के कारण मानसशास्त्र और कला कौशल में, जर्मन लोगों का मन अधिक लगता है। आत्म ज्ञान संपादन कर के आत्मसुख की इच्छा रखनेवाले लोग अब वहां विरले ही दृष्टिगोचर होते हैं! उद्योग और व्यापार द्वारा ऐहिक संपत्ति प्राप्त करनेवाले लोग तो आप को अनेक दिखाई पड़ेंगे परंतु यह सृष्टि कब निर्माण हुई, इस सृष्टि में कौन कौन से गूढ़ तत्त्व भरे हुए हैं, इसका निर्माता कौन है, सृष्टितत्त्व का सच्चा रहस्य क्या है, इन विषयों पर विचार करनेवाले लोग आप को शायद ही अब वहां कोई दिखाई पड़ें। यह कितने दुःख की बात है।"

सरकारी नौकरी द्वारा जो सांपत्तिक लाभ प्राप्त होता है उससे कहीं अधिक लाभ व्यापार द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, यह बात जर्मन लोगों के ध्यान में पूरे तौर पर आ गई है; अतएव इसका परिणाम सरकारी बड़ी बड़ी नौकरियों से लेकर छोटी छोटी नौकरी तक पड़ा है। व्यापार की ओर लक्ष्य जाने के पहले सरकारी नौकरी ही अधिक लाभदायक दिखाई पड़ती थी और इस कारण बड़े बड़े सरकारी ओहदों के अफसर सर्व साधारण लोगों से अहंकारपूर्वक वर्ताव करते थे। सर-

कारी अधिकारी होना ही वहां बड़े आदमी होने का चिह्न समझा जाता था। अतएव अधिकारी लोग रियाया को अपना प्रभुत्व बता कर तंग करते थे। परंतु व्यापार द्वारा संपत्ति प्राप्त करने का मार्ग खुल जाने से अब बिना सरकारी नौकरी किए हुए ही लोग संपत्तिशाली और धनाढ्य हो रहे हैं अतएव अधिकारियों का गर्व भी कम हो गया है, और वे अब साधारण लोगों के साथ खुले दिल से बराबरी का वर्ताव करने लगे हैं। परंतु सरकार में अपने काम के प्रति प्रतिष्ठा और मान पूर्ववत् बना हुआ है, नौकरी की यह मोहनी मूर्ति अब भी उनके सम्मुख बनी हुई है; इस कारण "हमें सरकारी नौकरी दो" ऐसी विनय करने का क्रम अब भी वहां बना हुआ है। परंतु यह होते हुए भी अब यह भाव नहीं रहा कि जितने अच्छे मनुष्य हैं वे सब सरकारी नौकर ही हैं। सरकारी नौकरी के अलावा अन्य कहीं किसी काम को करनेवाले अच्छे आदमी नहीं हैं; यह स्थिति अब बदल गई है। यदि जर्मन देश की सच्ची बुद्धिमत्ता का पता चलाना हो तो भिन्न भिन्न कंपनियों, कारखानों अथवा बैंकों में जाकर देखना चाहिए। इस उलट-फेर का कारण यदि आप जानना चाहते हैं तो यह बात सहज ही आप के ध्यान में आ जायगी कि जितना धन नौकरी कर के वेतन द्वारा प्राप्त हो सकता है उससे कहीं अधिक धन व्यापार द्वारा कमाया जा सकता है। बस, इसी कारण सरकारी नौकरी की ओर से लोगों का ध्यान हट कर व्यापार की ओर जा लगा है। सरकार भी नौकरी के लिये अच्छे आदमियों की खोज में अधिक

धन और पदवी का प्रलोभन दिखाने लगी है; परंतु इस प्रलोभन द्वारा उतनी अधिक मुट्ठी गरम नहीं हो सकती जितनी व्यापार द्वारा हो सकती है। जिन लोगों ने बड़े बड़े सरकारी ओहदों से इस्तीफा देकर व्यापार द्वारा पुष्कल धन उपार्जन किया, यदि उनका पता लगाया जाय तो बहुत से मनुष्य आप को मिल जावेंगे। जो लोग किसी बड़े सरकारी ओहदे पर पहले कार्य करते थे वे अब या तो किसी बड़े कारखाने के मेनेजिंग डाइरेक्टर के रूप में दिखाई पड़ेंगे अथवा ट्रांवे कंपनी में काम करते दृष्टिगोचर होंगे या किसी बड़े लोहे के कारखाने के मेनेजर होंगे। ऐसे उदाहरण कहां तक दिए जावें। पाठक स्वयं इसकी कल्पना कर सकते हैं।

आजकल के अन्य देशों के साथ उपरा चढ़ी करने का जो भाव जर्मन लोगों में उत्पन्न हो गया है इसका मुख्य कारण अंगरेज लोग यह समझते हैं कि उद्योग व्यवसाय करने वाले जर्मन व्यापारियों ने सारे संसार का व्यापार अपने हाथ में कर लिया है। परंतु यदि इस बात को जरा ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि वे लोग व्यापार की ओर ही ध्यान नहीं रखते वरन् वे चारों ओर अपनी दृष्टि डाला करते हैं और ऐसा करने से जर्मनी में प्रगट हुए नवीन तेज का प्रभाव अन्य ओर भी अनेक बातों पर पड़ कर उसके स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं। शरीर में दृढ़ स्नायु होना ही सच्चा पुरुषार्थ है, यह बात जर्मन लोग अच्छी तरह जान गए हैं। यह उन चिह्नों में से एक चिह्न है। गत शताब्दी के उत्तरार्ध के आरंभ में तीन युद्धों में प्रशिया ने विजय प्राप्त

की। यह उसी दृढ़ स्नायु-शारीरिक बल का प्रभाव है। राजकार्य संपादन करने के लिये शारीरिक सामर्थ्य की ओर विशेष ध्यान रखना स्वाभाविक बात है। गत पीढ़ी में जर्मन लोगों ने देश अथवा विदेश जहाँ कहीं राजकार्य किए, वे सब अपने शारीरिक बल के भरोसे पर ही किए। इन राजकार्यों का प्रवर्तक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रिंस बिस्मार्क था। "राजकीय प्रश्न अर्थात् शक्ति का प्रश्न" यह बिस्मार्क का दृढ़ विश्वास था, और इस नियम का वह अपने हृदय से प्रतिपादन करता था। युद्ध ही में उसने शक्ति का उपयोग नहीं किया वरन अन्य बातों में भी वह शक्ति का उपयोग करता था। अमुक शास्त्र का अमुक सिद्धांत है, यह प्रतिपादन करने वाले मनुष्य की बातों को शांतिपूर्वक सुन लेने की बिस्मार्क में बिलकुल आदत न थी। किसी विषय का अपने मन से चिंतन न करनेवाला और उसमें मग्न रहनेवाला उसकी दृष्टि के सामने भी नहीं आता था। किसी काम को करने का मन में विचार आते ही उसे दृढ़तापूर्वक कर डालना ही उसका स्वभाव था। वह यह नहीं देखता था कि इस बात का लोगों के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ेगा। अपने बहुत दिनों के सोचे हुए विचारों का अपने द्वारा अनादर होगा अथवा क्या, इसकी परवाह उसने कभी नहीं की। इस प्रकार का दृढ़ निश्चय शारीरिक शक्ति की दूसरी प्रतिमा है, यह स्पष्ट है। प्रिंस बिस्मार्क के इस कार्य का अनुमोदन करनेवाले और उसके मत का प्रतिपादन करनेवाले लोग जर्मनी में आज कल कितने ही हैं। उसकी बुद्धिमत्ता और उसकी दूरदर्शिता भले ही

किसी में न हो तौ भी उसके मत का प्रतिपादन करने में लोगों को कोई रोक टोक नहीं है! "हमारे राजनीतिज्ञों में यदि राजनीतिमत्ता की कमी हुई तो वे अपने शारीरिक बल से उस शक्ति को पूरा कर देंगे" ऐसे उद्गार एक प्रसिद्ध जर्मन सेनापति ने अभी थोड़े ही दिन हुए, निकाले थे। सच्चे राजनैतिक कार्य में, जर्मन राजनीतिज्ञ इतनी सैनिक घमंड की भाषा का व्यवहार नहीं करते हैं यह बात सच है; परंतु इन दोनों की जाति एक ही है।

आधिभौतिक शक्ति की इतनी प्रबलता होने का इतना अधिक प्रभाव जर्मनी में पड़ा कि सरकारी सत्ता इतनी अधिक बढ़ गई जितनी पहले कभी नहीं बढ़ी थी। परंतु सरकार के हाथ में, जितनी सत्ता अधिक रहती है, प्रजा के अधिकार उतने ही कम हो जाते हैं। अतएव प्रजा को हर बात में सरकार का मुख देखना पड़ता है। आज कल जर्मनी की ऐसी ही स्थिति हो गई है। जर्मन सरकार का अधिकार-क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण हो गया है। यदि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण किसी को देखना हो तो उसे जर्मनी की प्रचंड सेना की ओर ध्यान देना चाहिए। यथाशक्ति अपना बल बढ़ाते रहना, यही जर्मन लोगों की इच्छा है; और उस इच्छा का स्वरूप उसकी विशाल सेना है। जर्मन सेना ही जर्मन राष्ट्र है, * यही भाव सर्वत्र जर्मन लोगों में

---

* जर्मन समाज में सेना का कितना महत्त्व है यह बात 'जर्मन' नामक पुस्तक में इस प्रकार लिखी है—

फैला हुआ है । जमीन पर लड़नेवाली अजित सेना को समुद्री बेड़े के साथ करा देना चाहिए, यही सर्वत्र चर्चा हो रही है। ये सब बातें जर्मन शक्ति को बढ़ाने के लिये ही हैं। फौजी शक्ति बढ़ाने की इतनी प्रचंड तैयारी जारी होने पर भी, कुछ लोग कहते हैं कि इस से अन्य राष्ट्रों को कुछ भय का विशेष कारण नहीं है। क्योंकि वे लोग कहते हैं कि हमारे राष्ट्र के समान कोई दूसरा राष्ट्र शांतिप्रिय नहीं है। हमारी तो केवल यही इच्छा है कि जर्मनी का पग व्यापार में आगे बढ़े और इस इच्छापूर्ति के लिये अन्य राष्ट्रों से कलह उत्पन्न करने का हमें कोई कारण नहीं समझ पड़ता। राज्य में प्रचंड सेना हो, बस इसीलिये उसकी योजना की गई है। अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध उसका उपयोग करने का कोई प्रयोजन नहीं

One of the most striking features of German life is the presence every where of the regular soldiery and the great place the army holds in the thoughts and affections of the nation. Neat and tidy in appearance, you will see in every town officers strutting the streets with a look of conscious dignity, jingling their spurs and clanking their sabres......The daily press in Germany, while often ignoring political topics that seem to touch the masses more closely, is for ever devoting much space and time to a discussion of the different phases of army life, and their readers demand this......No where else in the world is the army so much identified with the nation, and no where else is respect and tender regard for the army so deep-seated and general. Pages 216—17.

है। इस प्रकार के विचार अनेक ग्रंथकारों ने अपनी अपनी पुस्तकों में लिख रक्खे हैं *। जर्मनी के सेठ साहूकार, मजदूर, कल, कारखाने और खेती करनेवाले सबों का ध्यान सरकार के इस सिद्धांत की ओर आकर्षित हो रहा है और उन्होंने सरकार का यह उदाहरण "जिसकी लाठी उसकी भैंस" सदा अपने सामने रक्खा है।

जान रस्किन ने एक स्थान पर लिखा है कि जब कभी किसी राष्ट्र के हृद्गत विचारों को जानना हो अथवा यह जानना हो कि किस उद्देश्यपूर्ति के लिये उसके प्रयत्न जारी हैं, तो उस राष्ट्र की वास्तुविद्या—आर्किटेकचर—का निरीक्षण करना चाहिए। जर्मनी की वर्तमान प्रचलित वास्तुविद्या की कसौटी पर रस्किन का मत यदि लगाया जाय तो उसका विचार अक्षरशः सत्य प्रतीत होगा। जर्मनी के उत्तर ओर के नगरों को देखो अथवा स्वयं बर्लिन राजधानी की ओर ध्यान दो, तो मालूम होगा कि गत तीस वर्षों में जितनी नवीन इमारतें तैयार हुई हैं उन सबों में मालिकों की शक्ति प्रगट करने का प्रयत्न किया गया है परंतु अठारहवीं शताब्दी अथवा इससे पहले के बने हुए बर्लिन के मकानों को देखने

---

* यदि उन ग्रंथकारों के कथन को सच्चा मान कर अन्य राष्ट्र अपनी अपनी शक्ति न बढ़ाते तो इस वाक्छल का परिणाम क्या होता! जर्मनी ने अपनी स्थल सैनिक शक्ति के साथ जल शक्ति भी खूब बढ़ाली है। इस काम के लिये वहाँ जितने धन की आवश्यकता होती है उतना धन सरकार मंजूर करती है।

से कारीगरों की कुशलता का पता चलता है। यह दशा सरकारी इमारतों की ही नहीं है, निज के लोगों के बनवाए हुए मकानों की भी यही दशा है। कारीगरी की ओर अब उतना ध्यान नहीं है जितना पहले था। अब तो इमारतों की भव्यता अथवा विशालता की ओर अधिक ध्यान है जो सांपत्तिक उन्नति का परिचय करता है।

आज कल जर्मन राष्ट्र का सुधार सब प्रकार से हो गया है और भविष्यत् में इससे भी अधिक होगा, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। पंचमहाभूतों को जर्मन लोगों ने एक प्रकार से अपने अधिकार में कर लिया है। पृथ्वी के बहुत बड़े भाग पर जर्मनी का प्रभुत्व स्थापित होना चाहिए, ऐसी आकांक्षा उनके हृदय में उत्पन्न हो चुकी है। व्यापार और व्यवसाय में वे अन्य लोगों की अपेक्षा आगे निकल गए हैं। सैनिक शक्ति वे इतनी अधिक बढ़ा रहे हैं कि जिससे अन्य देशवासी उनकी ओर आँखें उठा कर भी न देख सकें। परोत्कर्ष को न सह कर, वे समुद्र पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के उद्देश्य से समुद्र की ओर, बड़ी आशा से आँखें लगाए बैठे हैं। ये सब बातें सर्वोपरि सुधार के लक्षण नहीं है तो और क्या हैं? परंतु इस सुधार की जड़ में कौनसा तत्व है, यदि इस पर विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट प्रतीत होने लगेगी कि आधुनिक जर्मनी में गौरवोन्माद की तरंगें उठ रही हैं और इन तरंगों के मद में मस्त, वह अन्य राष्ट्रों का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकती है। सारे राष्ट्र मेरे स्वाधीन हो जावें और सर्वथा मेरी विजय हो, ये भाव उसके हृदय में उत्पन्न हो

गए हैं। जर्मनी के सुधार के संबंध में जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उसका भावार्थ " विजय-इच्छा " इन दो शब्दों से प्रगट किया जा सकता है। विजय-इच्छा ही आधुनिक जर्मनी का मूल मंत्र है।

सारे संसार की आँखों में चकाचौंध लानेवाला जर्मनी का यह सुधार, जर्मनी का सच्चा सुधार है या नहीं, इस प्रश्न पर अब विचार करना चाहिए और इस विचार को करने में, इस बात के सोच लेने की भी आवश्यकता है कि इस कार्य-संपादन के अर्थ, जर्मनी ने अपने सामने कौन सा उच्च ध्येय स्थापित कर रक्खा है। इस प्रकार का कोई उच्च ध्येय जर्मनी ने अपने सामने रक्खा है, इस विषय का पूरे तौर पर विचार करने से कोई भी बात मेरे ध्यान में नहीं आती, यह बात बड़े कष्ट के साथ कहनी पड़ती है। शारीरिक और भौतिक शक्ति को जर्मनी ने खूब बढ़ा दिया है परंतु इस शक्ति के साथ साथ लोगों के मत को अधिक सुसंस्कृत करने की अथवा उनकी नैतिक उन्नति और बुद्धि का विकास करने की शक्ति, जितनी आनी चाहिए उतनी आई हुई जान नहीं पड़ती। ये दोनों शक्तियाँ एक स्वरूप नहीं हैं। इस बात को साबित करने के लिये सुधार के इतिहास में पग पग पर दृष्टांत दिखाई पड़ते हैं। पहले प्रकार की शक्ति अर्थात् शारीरिक शक्ति पशु-वृत्ति का लक्षण है। हां, दूसरे प्रकार की शक्ति—मानसिक-शक्ति—का अवश्य महत्व है। शारीरिक शक्ति का यदि मानसिक-शक्ति में सम्मेलन न हो तो यह शक्ति बहुत दिन तक ठहर नहीं सकती। रोम ने अपनी सैनिक

शक्ति के भरोसे अर्थात् शारीरिक बल पर राज्य किया। परंतु सैनिक शक्ति के घटते ही, रोम की सत्ता नष्ट हो गई। यूनान के पास अधिक सेना नहीं थी परंतु सैनिक शक्ति कम होने पर भी यूनानियों ने मानसिक उच्च ध्येय को अपने सामने रख कर, अपनी मानसिक शक्ति की सहायता से, लोगों के मन को अपने अधिकार में कर लिया और ऐसी राजसत्ता के सामने रोमन लोगों को अपनी मान मर्यादा का विचार त्याग करना पड़ा।

आज कल जर्मनी की बिलकुल रोम जैसी दशा हो रही है। करीब पचास वर्ष हुए, तब से, जर्मनी के सामने रोम और यूनान के उदाहरण मौजूद हैं। इन दोनों उदाहरणों में से किस उदाहरण का जर्मन लोग अनुकरण करेंगे, इस ओर सारे संसार की आँखें लगी हुई थीं। परंतु दुःख की बात है कि जर्मन लोगों ने यूनानियों का उच्च ध्येय भुला कर रोमन लोगों का ही अनुकरण करना उचित समझा है। वर्त्तमान काल को देखते हुए यही बात प्रतीत हो रही है। अब भविष्यत् में वे शारीरिक शक्ति की उन्नति के साथ साथ मानसिक उन्नति करने के उद्योग में लगेंगे अथवा नहीं, यह बात देखना बाक़ी है। ऊँचे दर्जे का तत्वज्ञान, मनुष्य के मन-रंजन करने अथवा शांति देने योग्य काव्य और साहित्य, प्राचीन जर्मनी ने संसार के सामने ला कर उपस्थित कर रक्खा है और उसकी सहायता से संसार पर अत्यंत उपकार भी हुए हैं परंतु इस प्रकार का कौन सा उपकार आधुनिक जर्मनी द्वारा संसार को प्राप्त होगा, यह बात इस समय कहना

बहुत कठिन है। धन धान्य से भरे हुए कोठे अथवा माल से भरे हुए व्यापारी जहाज अथवा नए नए शास्त्रीय शोधों द्वारा बढ़ी हुई अपार संपत्ति, यह कुछ योग्य उपहार नहीं है, जिसके लिये कोई जर्मनी को अनेक धन्यवाद दे अथवा उसके यश की चर्चा का प्रसार हो। "जर्मनी का सुधार कहा जाता है वह है कहाँ ?" यह प्रश्न एक जर्मन लेखक ने अभी कुछ समय हुआ तभी किया था, उसका भी भावार्थ अथवा रहस्य यही है।

आज कल के समय में, किस विषय की ओर जर्मनी का लक्ष्य है यह बात यदि विचारपूर्वक देखो जाय तो यह बात स्पष्ट प्रतीत हो जाती है कि जड़-सृष्टि पर वह अपना प्रभुत्व जमाने की चिंता में ही लगा हुआ है। शारीरिक और आधिभौतिक शक्ति पर ही उसका दारोमदार है। पंच महाभूतों को खींच कर अपने अधिकार में लाने की शक्ति का विकास, जितना जर्मन लोगों में देखा जाता है उतना अन्य राष्ट्र के लोगों में बहुत ही कम देखा जाता है। उनके काम करने की पद्धति अनुकरण करने योग्य है। यह बात नहीं है कि जर्मनी में तैयार की हुई यंत्रसामग्री सर्वोत्कृष्ट होती है, परंतु उन यंत्रों की सहायता से जो काम किया जाता है वह काम अवश्य अति उत्तम होता है, यह बात बिलकुल निर्विवाद है। तौ भी इन अचेतन यंत्रों को छोड़ कर मनुष्यरूपी सचेतन यंत्र को हाथ में लेते ही हाथ डगमगाने लगता है। परंतु इसका कारण क्या है ? इसका कारण भी उपरोक्त बतलाई हुई मनोवृत्ति के सिवा और कुछ नहीं है। जर्मनी

के कालेजों और यूनिवर्सिटियों में बड़े बड़े पंडित निर्माण होते हैं। कला कौशल की शिक्षा देनेवाली पाठशालाओं में छोटे बड़े सब प्रकार के यंत्रों की पूरी पूरी जानकारी रखने-वाले तथा उन यंत्रों को चलानेवाले कारीगर उत्पन्न होते हैं। परंतु विद्यार्थियों को शीलवान बनाने अथवा उनके अंग में किसी विशेष गुण के उत्पन्न करने में वहाँ की यूनिवर्सिटियों और कालेजों का बिलकुल उपयोग नहीं होता। देश की प्रच-लित राज्यव्यवस्था की जड़ में यह दोष होने से वहाँ के कुछ सुशिक्षित लोग भी इस बात को बुरा कहते हैं। परंतु यह राज्यपद्धति बुरी क्यों है, इसका दोष किस पर है और यह दोष दूर किस प्रकार किया जा सकता है, इस विषय में सुशिक्षित लोगों ने अभी तक कोई स्पष्ट राय नहीं दी है। परंतु वे इस प्रथा को दूषित अवश्य बताते हैं। राज्य व्यवस्था से सुशिक्षितों को जितना लाभ होना चाहिए उतना अभी नहीं हुआ है, इस कारण जर्मन राज्य-नौका ठीक मार्ग पर नहीं जा रही है, यह उनका विश्वास है। परंतु राज-सत्ता उनके हाथ में न होने से वे जहाँ के तहाँ हाथ मलते बैठे हुए हैं।

जर्मन लोगों में अनेक उत्तम उत्तम गुण भी पाए जाते हैं। उनके गुणानुरूप संसार में उनकी उन्नति हो, ऐसी इच्छा रखनेवाले जर्मनी के बाहर भी बहुत से लोग मौजूद हैं। परंतु उनके मतानुसार ही यह भी एक बात पाई जाती है कि जर्मन लोगों के हाथ से जो एक बहुत बड़ी भूल हुई है, वह यह है कि उन्होंने अपने राष्ट्र का पूर्व का ध्येय त्याग कर समान रूप में ऐहिक उन्नति को प्राप्त करने के पीछे अपने आप

को लगा दिया है। ऐहिक संपत्ति का यह निदिध्यास आगे चल कर जब कम हो जायगा तब उनकी सात्विक वृत्ति का उदय होगा और राजसिक वृत्ति का लय हो जायगा। कुछ वर्षों के पश्चात् यह सुपरिणाम होने से अपने आप ये बातें स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेंगी, ऐसी दृढ़ आशा की जाती है। जर्मन, राष्ट्र-सुधार की दृष्टि से बाल्यावस्था में है। बचपन का लड़कपन अबतक उसमें मौजूद है। यह लड़कपन दूर हो कर, बुद्धि की स्थिरता आने और दृढ़ विचार करने की शक्ति का विकास होने पर जर्मनी हर तरह से एक अनुकरणीय राष्ट्र बन जायगा, ऐसी आशा करना कुछ अनुचित बात न होगी।

दूसरा अध्याय।

जर्मनी के तीन विभाग।

जर्मनी अथवा जर्मनी के लोग, इस विषय में सर्व साधारण सिद्धांतों का निश्चित करना, बड़ा कठिन काम है। "जर्मनी" इस एक शब्द में भिन्न भिन्न छब्बीस प्रांतों का बोध होता है और इन प्रांतों में भिन्न भिन्न प्रकार के लोग निवास करते हैं। उन प्रांतों में भौगोलिक दृष्टि से भी बड़ा अंतर है। उनके राजकीय इतिहास का स्वरूप भी बिलकुल भिन्न भिन्न है। हर एक जाति की उपजातियों के भी बहुत से भेद हैं और घरों की रहन सहन तथा ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग भी भिन्न भिन्न हैं। इस भिन्नता के कारण, सर्वसाधारण सिद्धांतों का स्थिर करना बड़ा कठिन काम है। परंतु यदि सावधानी के साथ विचार किया जाय तो इस बात का निश्चित कर लेना बिलकुल असंभव भी नहीं है। जर्मन राष्ट्र के यदि कई विभाग कर दिए जाँय तो इस बात का बताना बहुत आसान हो जायगा। परंतु ये विभाग निर्दोष अथवा प्रमाणबद्ध होंगे, यह हमारा सिद्धांत नहीं है। परंतु यदि जर्मनी और जर्मन लोगों का ठीक पता लगा कर, उनका हाल जानना है, तो ऐसी योजना किए बिना, यह काम होना असंभव है और यदि ऐसा किया जायगा तो भिन्न प्रकार से कुछ न कुछ स्थानिक मर्यादा त्याग करनी पड़ेगी।

हम अपने सिद्धांत के अनुसार जर्मनी के तीन विभाग करना चाहते हैं। लोरेन, बेडन, बवेरिया और सेक्सन इन प्रांतों की सरहद पर से पश्चिम से पूर्व की ओर एक रेखा खींचनी चाहिए। इस रेखा से जर्मनी के दो भाग—उत्तर जर्मनी और दक्षिण जर्मनी—हो जाते हैं। फ्रांस और बेलजियम के समीप, राइन प्रांत से पूर्व की ओर रूसी पोलैंड की सरहद तक सारा प्रशिया प्रांत तथा इसके सिवा मेल्केनबर्ग, ओल्डन-बर्ग और ब्रांसविक प्रदेश उत्तर जर्मनी की ओर जाता है। आल्सेस-लोरेन, साक्सनी के तीन राज्य, बवेरिया और वर्टवर्ग, उसी प्रकार ग्रांड डची आफ बेडन-इतना प्रदेश दक्षिण जर्मनी में शुमार किया जाता है। इन दोनों के बीच का विभाग थुरिंगियन स्टेट्स को इन दोनों भागों में से किसी भाग में न मिला कर स्वतंत्र रहने दिया है और ऐसा करने के लिये हमारे पास कई कारण भी उपस्थित हैं।

पूर्व पश्चिम रेखा पर एक दूसरी लंबी रेखा बनाई जाय तो स्वयं प्रशिया के दो भाग हो जाते हैं, अर्थात् पश्चिम और पूर्व। इन दोनों देशों की पूर्व संज्ञा कायम रख कर इन्हें "पश्चिमी एल्बा प्रांत" और "पूर्वी एल्बा प्रांत" कहने में भी कुछ हर्ज नहीं है। पहले भाग में हनोवर, हेसी-नसाऊ, न्हाइनलैंड और वेस्ट फालिया ये प्रांत आ जाते हैं, और दूसरे भाग में खेती करने योग्य प्रशिया का समतल भाग मेल्कनबर्ग के दो प्रांत आते हैं। एल्ब नदी के पूर्व की ओर का भाग जर्मन राष्ट्र के धान्य की कोठी है यदि ऐसा कहा जाय तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि साल भर के खर्च के लिये, जितना गेंहू और राय (Rye)

जर्मनी को चाहिए उसका दो तिहाई भाग इसी प्रांत में उत्पन्न होता है ।

जिन तीन भागों में देश को हमने बाँटा है वह बाँट अधूरी अवश्य है, यह हमें ही प्रतीत होता है । परंतु इस व्यवस्था से जर्मन राष्ट्र में भिन्न भिन्न प्रकार के जो लोग निवास करते हैं, उनके स्वभाव, व्यवसाय और उनके हित अनहित का सांगोपांग विचार करना और उससे बहुत से महत्व के सिद्धांतों का निश्चय करना, सहज होगा, इसमें कोई शंका नहीं है ।

पहले पहल ही पाठकों को यह दिखाई पड़ेगा कि पश्चिम से पूर्व की ओर जो एक आड़ी रेखा खींची है, उस रेखा से जर्मनी के राजकीय दृष्टि से स्थूल प्रमाण पर ही बिलकुल दो निराले भाग हो जाते हैं । उत्तर भाग में (हंबर्ग और ब्रेमन दो प्रांतों को अलग कर के) कंसर्वेटिव पक्ष के लोगों की अधिक प्रबलता है । जर्मनी का इतिहास मुख्य कर इसी पक्ष के लोगों के मतानुसार निर्माण हुआ है । इतना ही नहीं, वर्तमान समय में भी, जो देश की भीतरी व्यवस्था स्थिर की गई है उसमें भी उन्हीं प्रांतवासियों का मत अधिक है ।

प्रशिया ही जर्मनी है, यह जो लोगों का विचार है, वह ग़लत है । प्रशिया की राजकीय, सामाजिक और औद्योगिक स्थिति को देख कर सारी जर्मनी के संबंध में किया हुआ अनुमान भूल है और आक्षेप करने योग्य है, इसमें कुछ संदेह नहीं है । प्रशिया में विपुल संपत्ति है, सुधार के कार्यों में भी उसका पैर आगे बढ़ा हुआ है, उस प्रांत की राज्यव्यवस्था

भी बहुत अच्छी है, सैनिक शिक्षा और कार्य भी अनुकरणीय हैं, ये बातें सब ठीक हैं, परंतु राजकीय मामलों में वह अभी सभों से पीछे है। दक्षिण ओर के छोटे छोटे प्रांत इस विषय में उस से कहीं आगे हैं।

उत्तर जर्मनी और दक्षिण जर्मनी में, पचास वर्ष पहले लोकमत की कुछ अनुकूल बातें हो जाने के कारण वर्तमान राज्यव्यवस्था की बुनियाद पड़ी। परंतु इन दोनों भागों में, उस समय जो एक महत्व की बात रह गई वह अब तक बराबर ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज करीब करीब साठ वर्ष से प्रशिया में पार्लियामेंट क़ायम है; परंतु उसमें अनियंत्रित-सत्ता का प्रभाव अब भी कम नहीं हुआ है। उसका मत है कि पार्लियामेंट के अधिकार राजा ने स्वयं प्रजा को प्रदान किए हैं, प्रजा ने स्वयं अपनी शक्ति से, राजा से प्राप्त किए हों, यह बात नहीं है। राजा प्रसन्नतापूर्वक जो अधिकार प्रजा को प्रदान करें उन्हीं को पा कर प्रजा को संतोष मानना चाहिए। राजा की इच्छा के विरुद्ध जाने का प्रयत्न करना उचित नहीं है, यह प्रशियन राजनीति का मूल मंत्र है और इस बात को राजा और प्रजा दोनों अच्छी तरह समझते हैं। राज्यव्यवस्था का मुख्य प्रवर्त्तक राजा होने से, प्रशिया की राज्यव्यवस्था में एक प्रकार की कठोरता, उद्दंडता आ जाने से उसमें नम्रता का बिलकुल लेश नहीं पाया जाता है। गत पचास साठ वर्ष से जितने अधिकार राजा ने आरंभ में कृपा कर के, प्रजा को प्रदान किए, उतने ही अधिकार आज तक प्रजा को प्राप्त हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि राजा

और प्रजा दोनों अपने अपने मन में, एक दूसरे से भयभीत और सशंकित बने रहते हैं। राजा को यह शंका रहती है कि प्रजा अपने से अधिक अधिकार माँगेगी और प्रजा को यह भय और शंका सदा बनी रहती है कि जो अधिकार कृपा कर राजा ने प्रदान किए हैं कहीं उनको वह फिर न वापस ले लें। राजनैतिक आंदोलन करने की जितनी शक्ति प्रजा में चाहिए उतनी उसमें नहीं है। क्योंकि जिन लोगों का राज दरबार में प्रभाव है, वे सब कंसर्वेटिव मत अर्थात् राजपक्ष के हैं और वे सदा राजा का ही पक्ष ग्रहण करते हैं। परंतु दक्षिण के ओर की दशा इससे भिन्न है। वहाँ लिबरल पक्ष का जोर पहले से ही अधिक है। राजसत्ता नियंत्रित हो कर प्रजा को अधिक अधिकार मिलना चाहिए, उनका यह ध्येय है और इसी ध्येय को साध्य करने के प्रयत्न में वे बराबर लगे रहते हैं।

इस प्रकार का प्रचलित राजकीय मतभेद ही उत्तर और दक्षिण जर्मनी में है, ऐसा नहीं है; उनके संगठन में भी बड़ा अंतर है। उत्तरी विभाग के लोगों का मन कठोर और स्वभाव रुक्ष होता है। उनमें मुरव्वत नहीं होती। इसके विपरीत दक्षिणी विभाग के लोगों में अधिक सौजन्य पाया जाता है। उनका स्वभाव विनोदी होता है। वे खुले दिल से काम करनेवाले होते हैं। उनकी रहन सहन में अधिक ठाठ बाट और बनावट नहीं है। ईश्वर के दिए हुए जीवन और आयुष्य को सुखपूर्वक आनंद के साथ व्यतीत करने की ओर उनकी बुद्धि की प्रवृत्ति अधिकतर पाई जाती है।

उत्तरी जर्मनी के हमने पुनः दो विभाग किए हैं, यह पाठकों को स्मरण होगा। इन दो भाग में भी उपरोक्त कथनानुसार भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता राजकीय विषयों में ही पाई जाती हो, यह बात नहीं है। सांपत्तिक स्थिति में भी वह भिन्नता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। एल्ब नदी के पश्चिम की ओर का प्रांत, जर्मनी के प्रसिद्धि में आए हुए उद्योग-धंधों का मुख्य स्थान बन गया है। इसके विपरीत एल्ब नदी के पूर्व की ओर के भाग को अवलोकन कीजिए तो मालूम होगा कि वह प्रांत अकेला प्रशिया की ही नहीं सारे जर्मन देश की धान्यभूमि है। वहाँ कारखाने वगैरह कुछ नहीं हैं। इस भाग में अनाज के अलावा "बीट" नामक एक वृक्ष की जड़ बहुतायात से पाई जाती है जिससे वहाँ शक्कर तैयार करते हैं। वहाँ पर छोटे छोटे जंगल भी पाए जाते हैं। रूस की ओर जितना अधिक बढ़ते जाइए आपको उतने ही अधिक जंगल दृष्टिगोचर होते जाँयगे। इसी कारण गोरक्षा और जानवरों के पालन-पोषण का कार्य वहाँ अधिकता के साथ होता है। पूर्वी भाग और पश्चिमी भाग में धार्मिक भिन्नता स्पष्ट तौर पर प्रतीत नहीं होती। प्रोटेस्टेंट और कैथलिक लोग चारों ओर पाए जाते हैं। कहीं तो प्रोटेस्टेंट लोग अधिक हैं और कहीं कैथलिक लोगों की बस्ती ज्यादा है। प्रशिया में, रोमन कैथलिक ही अधिक आबाद हैं। जर्मनी की कुल जन-संख्या में एक तिहाई रोमन कैथलिक लोग पाए जाते हैं।

प्रशियन राज्य के इन दो विभागों में सांपत्तिक दृष्टि से

जो अंतर दिखाई पड़ता है उसका परिणाम वहाँ की लोक संख्या पर तथा बड़े बड़े नगरों की संख्या पर पड़ा है। पूर्वी भाग में आबादी कम है। गांव और शहर एक दूसरे से फ़ासले पर बसे हुए हैं। प्रशिया में एक लाख से ऊपर आबादी के कुल २८ शहर हैं। इनमें से ९ पश्चिमी भाग में और ४ पूर्वी भाग में हैं; बाक़ी के कुछ उत्तर की ओर और कुछ दक्षिण की ओर हैं और कुछ बर्लिन राजधानी के समान मध्य भाग में पाए जाते हैं। पूर्वी विभाग में, उद्योग-धंधों की कमी है और इसी कारण खास तौर पर आबादी कम पाई जाती है। पश्चिमी विभाग में लोहे और पत्थर के कोयले की बहुत सी खानें हैं। इन खानों में काम करने के लिये, बहुत से मजदूर पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं। यह क्रम २५ वर्ष से बराबर चला जा रहा है। इसके अतिरिक्त पूर्वी विभाग में मृत्यु संख्या अधिक होने और बालकों की उत्पत्ति, मृत्यु की अपेक्षा कम होने के कारण, वहां की आबादी बढ़ने नहीं पाती। बड़े बड़े कारखानों और खानों में अधिक मजदूरी मिलने के कारण मजदूर लोग पूर्व से पश्चिम को चले जाते हैं और पूर्वी विभाग में इसी कारण खेती करने योग्य मज़दूर कम मिलते हैं। यदि थोड़े दिनों तक यही दशा रही तो खेती कम होने के कारण, जर्मन राष्ट्र के उपयोग में आने लायक़ अनाज की बहुत कमी पड़ जायगी और राष्ट्र के सामने यह एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो जायगी। सन् १९०० ईस्वी में २४५० कुटुंबों के १०२७० युवा मज़दूर विवाह होने के पहले ही पूर्वी-प्रशिया से निकल कर पश्चिमी-प्रशिया में जा बसे। परंतु आज इस

बात को पंद्रह सोलह वर्ष हो गए। वर्तमान समय में यह संख्या बहुत कुछ बढ़ गई होगी, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है।

पूर्व और पश्चिम में एक और महत्व का अंतर है। पूर्व की ओर खेती बहुतायत से होती है और पश्चिम की ओर जो थोड़ी बहुत है वह बिलकुल नाम मात्र है। भारत में जिस प्रकार बड़े बड़े जागीरदार और ताल्लुक़ेदार हैं उसी प्रकार जर्मन के पूर्वी भाग में बहुत से स्वतंत्र जागीरदार हैं। उनकी स्वतंत्रता के कारण प्रशियन राज्य के इस भाग में लोगों को नागरिक के जितने राजकीय अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, उतने नहीं हैं। और बात तो दूर जाने दीजिए, उन्हें स्थानिक स्वराज्य के अधिकार भी बहुत ही संकुचित प्राप्त हुए हैं! इग्लैंड अथवा अन्य देशों में सैनिक सेवा करने की शर्त पर जागीरदारों की ओर से उप-जागीरदारों को इनाम के तौर दी हुई जागीरों की प्रणाली को "फ़्यूडल सिस्टम" कहते हैं। बस इसी पद्धति का बिलकुल नमूना प्रशिया के इस भाग में पाया जाता है। वहाँ इस पद्धति को "मनोरियल सिस्टम" कहते हैं। इस पद्धति का प्रचार होने से वहाँ के जागीरदार अपने मातहत जागीरदारों और उनकी रियाया के साथ बड़ा बुरा बर्ताव करते हैं। इस कारण उन जागीरों की रियाया की दशा अच्छी नहीं है और सुधार संबंधी कार्य्यों में वे बहुत पीछे हैं। ये लक्ष्मीपुत्र अपनी मातहत प्रजा के साथ कैसा वर्ताव करते हैं, इस बात की ओर जब मि० स्टीन ने सरकार का ध्यान दिलाया था तब से वे उस गुलामी की दशा से कुछ कुछ छूट गए हैं। प्रशियन

डायट (Diet) अर्थात् पार्लियामेंट ने कुछ ऐसे नियम बना दिए हैं जिनसे वहाँ के जागीरदारों की रियाया के गुलामी के बंधन बहुत कुछ ढीले हो गए हैं और वे भी स्वतंत्रता का कुछ अनुभव करने लगे हैं। परंतु पूरी तौर पर नागरिकों के अधिकार उन्हें अब भी प्राप्त नहीं हैं। "मनोरियल सिस्टम" संबंधी तथा क़ायदा बन जाने पर भी गुलामी का अंत वहां अभी नहीं हुआ है। अतएव प्रजा और जागीरदार दोनों की उन्नति वर्त्तमान सुधार के ज़माने में भी बहुत धीरे धीरे हो रही है।

पूर्वी प्रशिया में अब भी राजकाज पुरानी पद्धति से चलता है। क्योंकि वहाँ के जागीरदारों को दीवानी, फ़ौजदारी और माली अधिकार मिले हुए हैं। वहाँ की स्थिति को सुधारने के लिये सन १८५० में एक बिल पार्लियामेंट के सामने उपस्थित किया गया था परंतु लोगों ने उसे पास नहीं होने दिया। सन १८९२ में एक नया कानून पेश हुआ जो ज्यों त्यों कर के पास तो हो गया परंतु इस नए कानून के अनुसार भी जागीरदारों का राजकाज स्वतंत्र है; अतएव वहाँ के लोगों को, स्थानिक स्वराज्य के अधिकार भी पूरे तौर पर अभी तक प्रदान नहीं किए गए हैं।

प्रशियन राज्य के पूर्वी भाग के, सांपत्तिक और सामाजिक विषय में, इतना अधिक पीछे रहने के और भी अनेक कारण हैं। वहाँ पर खेती का ही काम अधिक होता है। एक एक जमीदार के पास हजारों बीघा ज़मीन होने के कारण संसार से अलग रहने की ओर वहाँ के लोगों की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है और ऐसे ही विचारों के कारण उन्हें

अधिक हानि उठानी पड़ती है। जमींदारों और उनकी जमीनके शहरों से दूर होने के कारण शहर के लोगों की सामाजिक, सांपत्तिक, औद्योगिक और राजनैतिक उन्नति कैसे होती है, इस ओर उन लोगों का ध्यान नहीं जाता। जहाँ पर अज्ञान का वास है, वहाँ पर उन्नति और सुधार कितना हो सकता है, इसका विचार पाठक स्वयं कर लें। जिस प्रकार एक जुलाहा या कोरी अपना ताना पूरा बाँधे हुए, उतनी ही जगह का, अपने को राजा समझता है; उसी प्रकार वहाँ के बड़े बड़े जागीरदार अपने इलाक़े का ही अपने को राजा समझते हैं; लोगों पर हुक्म करने का हमें अधिकार है, हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारी प्रजा को कोई भी कार्य करने का अधिकार नहीं है; इतना ही नहीं, जो आज्ञा हम दें उसके विरुद्ध प्रजा को मुँह से एक शब्द भी निकालना नहीं चाहिए, ऐसी नवाबी की स्थिति में, वहाँ के लोग क्या उन्नति कर सकते हैं! ऐसी स्थिति में रहनेवाले लोगों की सामाजिक उन्नति कभी नहीं होती और न उनकी बुद्धि का विकास होता है। एल्ब और विश्चुला नदी के बीच के प्रदेश पर बहुत समय हुआ तब स्लाव जाति के लोगों का अधिकार था। उस समय वहाँ के निवासियों की स्थिति अच्छी थी। परंतु जब से वह देश जर्मन लोगों के हाथ में गया है तब से वहाँ पर अवनति का जो आरंभ हुआ वह आज तक बराबर बना हुआ है। इस प्रांत की आबोहवा भी पश्चिमी प्रांत की आबोहवा के समान उत्तम नहीं है और न ज़मीन ही अधिक उपजाऊ है। इन कारणों से जितनी
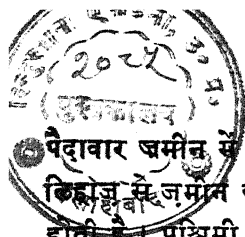
पैदावार जमीन में होनी चाहिए नहीं होती। पैदावारी के लिहाज़ से ज़मीन की मालगुज़ारी भी सरकार को कम वसूल होती है। पश्चिमी प्रांत की मालगुज़ारी की अपेक्षा, इस प्रांत की मालगुज़ारी एक तिहाई के क़रीब है। खेती की इस बुरी दशा को सुधारने के लिये प्राशियन गवरमेंट ने बहुत कुछ प्रयत्न किए परंतु कोई भी अच्छा परिणाम आज तक नहीं निकला।

राजनैतिक विषयों में, जर्मनी का दक्षिणी विभाग उत्तरी विभाग से कहीं आगे है; यह बात ऊपर कही जा चुकी है। अब यदि उत्तरी विभाग के ऊपर विचार किया जाय तो यह बात मालूम होगी कि पश्चिमी विभाग पूर्वी विभाग की अपेक्षा काम के विचार से बहुत आगे है। एल्ब नदी के पूर्व की ओर, खेती पर गुजारा करनेवालों प्रांत में प्रशिया, के कंसर्वेटिव लोगों का प्रभाव बहुत अधिक है। पार्लियामेंट में सभासदों के चुनाव का काम, इतना मर्यादित कर दिया गया है कि ग़रीब लोगों की वहां तक पहुँच ही नहीं होने पाती। अतएव पार्लियामेंट में अमीर लोगों की भरमार होने के कारण ही वहां के निवासियों की जितनी उन्नति होनी चाहिए, नहीं होती। इंग्लैंड में भी लिबरल और कंसरवेटिव दो दल हैं। लिबरल उन्नति के पक्षपाती हैं परंतु कंसरवेटिव उन्नति के विरोधी नहीं है। उनका मत है कि जो कुछ सुधार या उन्नति का कार्य किया जाय वह धीरे धीरे हो। इस पक्ष के लोग लिबरल पक्ष के लोगों का मान करते हैं और यही कारण है कि दोनों के सम्मेलन से इग्लैंड का राजकाज बड़ी

उत्तमता से चलता है । परंतु जर्मनी में, इसके विपरीत कार्य होता है । वहां पर कंसरवेटिव लोग सुधार और उन्नति के पूरे द्वेषी हैं और चलती गाड़ी के आगे रोड़ा डालने के कार्य में वे बड़े कुशल और निपुण हैं । इस प्रकार के लोग प्रशिया के पूर्वी भाग में जितने हैं उतने यूरोप ही क्या, स्वयं जर्मनी के अन्य भागों में ढूँढने से भी न मिलेंगे ।

पार्लियामेंट की मेंबरी की बहुत सी जगहें इन नवाबों ने हस्तगत कर रक्खी हैं और वहां पर बैठ कर वे यह काम करते हैं कि कोई काम प्रजा की भलाई के लिये वहां उपस्थित किया जाता है तो ये स्वार्थ-साधु अपनी स्वार्थ-बुद्धि से उस काम में विघ्न उपस्थित कर देते हैं । शिक्षा सुधार के कामों में भी ये लोग कुछ प्रयत्न करते हों, यह भी नहीं है । आज से सौ वर्ष पहले शिक्षा के संबंध में, जो उनका मत था वही अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है । इसी कारण, वर्तमान समय में भी उत्तर जर्मनी और पूर्वी-प्रशिया के देहाती मदरसों में, मामूली लिखना पढ़ना और कुछ हिसाब किताब पढ़ा देना ही बस समझा जाता है । उनको भय है कि यदि किसानों के बालकों को शिक्षा देने का प्रबंध कर दिया जायगा तो उनमें शिक्षा के प्रभाव से महत्वाकांक्षा उत्पन्न हो जायगी, जो उनके अत्याचारों के लिये हानिकारक है । अतएव जिस तरह किसानों के बाप दादा 'ओ, ना, मासी' से आगे शिक्षा में नहीं बढ़े उसी प्रकार उनके नाती पोतों को भी शिक्षा में आगे नहीं बढ़ना चाहिए । ये उनके स्वार्थमूलक विचार हैं । परंतु सरकार ने, उन लोगों के विचारों को एक ओर रख कर,

शिक्षा क्रम में बहुत कुछ सुधार किया है । प्रशिया में शिक्षा की व्यवस्था जितनी उत्तम है उतनी उत्तम व्यवस्था संसार के और किसी देश में नहीं है, यह बात उदाहरण के तौर पर बताई जाती है । इस उदाहरण को मानने के लिये हम तैयार हैं । प्रशिया में जैसी उत्तम शिक्षा मिलती है वैसी अन्य देशों में नहीं मिलती, यह हम मानते हैं । परंतु इतना होने पर भी, देहाती मदरसों की शिक्षा में, अब भी बहुत न्यूनता पाई जाती है और जो कुछ थोड़ा बहुत प्रबंध है भी, वह उच्च कोटि का नहीं है । प्रशिया में किसान बालकों के लिये जो पाठशालाएँ हैं वे हमारे " मकतबों " से कुछ अधिक अच्छी नहीं हैं । इंग्लैंड में और खास कर आयर्लैंड में, सन् १८७० ईस्वी तक इस प्रकार की बहुत सी पाठशालाएँ थीं । परंतु अब उनका वहाँ नामोनिशान नहीं रहा । इसका श्रेय मि० मॅथ्यू ऑर्नोल्ड नामक एक सज्जन को प्राप्त है । उन्होंने आयर्लैंड की पाठशालाओं का जैसा वर्णन किया था वैसी ही स्थिति इस समय उत्तरी-जर्मनी में दिखाई पड़ती है । विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षकों की कमी, पाठशालों के टूटे फूटे मकान, योग्य परंतु कम वेतन पानेवाले शिक्षक, खर्च में कंजूसी करनेवाले व्यवस्थापक और द्रव्य के अभाव के कारण पुस्तकालयों, प्रयोग-शालाओं वगैरह का अभाव । इन सब कारणों से पाठशालाओं में होमियोपैथिक तत्त्व के अनुसार अर्थात् अल्प शिक्षा विद्यार्थियों को प्राप्त होती है, यह एक स्वाभाविक बात है । इस संबंध में प्रशियन गवरमेंट का कोई क़सूर नहीं है । इस बुरी स्थिति को सुधारने के

लिये, सरकार अपनी शक्ति के अनुसार उपाय करती है। परंतु लोकप्रतिनिधियों से जितनी सहायता उसे मिलनी चाहिए उतनी न मिलने के कारण, सरकार के उपायों और प्रयत्नों का परिणाम जैसा निकलना चाहिए वैसा नहीं निकलता। एल्ब नदी के पूर्वी भाग की ओर से जो प्रतिनिधि पार्लियामेंट (डायट) में आते हैं, यदि वे अपनी पुराणप्रियता को त्याग कर सरकार के प्रयत्न को सफल बनाने की अपने मन में ठान लें, तो जो शोचनीय स्थिति इस समय दिखाई पड़ती हैं वह न दिखाई पड़े।

पूर्वी-प्रशिया के जमींदारों के संबंध में अब तक जो कुछ लिखा गया है, उसकी विवेचना से यह बात स्पष्ट प्रगट होती है कि वहां के सारे जमींदार सुधार के प्रतिकूल हैं। परंतु यह बात नहीं है। संसार में अपवाद भी हुआ करता है। कुछ जमींदार ऐसे भी हैं जिन्हें आज कल के सुधारों से प्रेम है। वे सुधार के नवीन मार्गों को पसंद करते हैं। खेती के साथ ही साथ किसानों का भी सुधार वे लोग चाहते हैं। वे शास्त्रीय पद्धति से खेती करने के भी पक्षपाती हैं। ऐसे लोगों की संख्या जब बढ़ जायगी और उनका प्रभाव लोगों पर अधिक पड़ने लगेगा तब पूर्वी-प्रशिया की दशा सुधर जाने में अधिक समय न लगेगा। यह दशा समय पाकर अवश्य सुधरेगी, इसमें संदेह नहीं है। जमींदारों को अपने अपने इलाके में जो राजकीय अधिकार प्रदान किए गए हैं वे अधिकार क्रमशः कम होने चाहिएँ। जमींदार और उनके वंशजों के अधिकार कम होने से

लोगों में समान भाव की जाग्रति होगी। हाथ में अपार सम्पत्ति, उच्च कोटि के राजनैतिक अधिकार और लोगों के साथ हलकेपन का बरताव करने की आदत, इन तीन कारणों से जो त्रिदोष जमींदारों में उत्पन्न हुआ है उसकी औषधि सर्वोत्तम यही है कि लोगों के साथ समान भाव के बर्ताव का आरंभ किया जाय। समानता के व्यवहार से यह दोष दूर होकर उनकी स्वतः की और वहां की प्रजा की, नैतिक और साम्पत्तिक स्थिति सुधरने में अधिक विलंब नहीं लगेगा।

तीसरा अध्याय ।

उद्योग-युग ।

सन् १८७१ में जर्मनी और फ्रांस के बीच जो युद्ध हुआ, उस युद्ध में, जर्मनी ने विजय प्राप्त की । बस, उसी समय से जर्मनी में उद्योग धंधों और व्यापार की उन्नति का आरंभ हुआ । इसी साल जर्मन साम्राज्य की स्थापना हुई । उसी समय से राजनैतिक मामलों में और व्यापारिक कार्यों में जर्मन लोग विशेष रूप से चमकने लगे । जर्मन एक राष्ट्र है, यह कल्पना उसी समय पहल पहल, वहां के निवासियों के मन में उत्पन्न हुई । संघ शक्ति के बढ़ने से, उसके बल पर, बड़े बड़े कार्यों को हाथ में लेने का साहस उनमें उत्पन्न हो गया । जर्मनी की वृद्धावस्था जाती रही । जिस प्रकार ययाति राजा ने बुढ़ापे में तरुणता प्राप्त की थी उसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मन राष्ट्र ने तरुणता प्राप्त की । तरुणावस्था के उत्साह, आवेश और धैर्य का परिणाम उनके व्यवहार पर पड़ने लगा । अपने पड़ोसी राष्ट्रों का आतंक जो उनके मन पर था, वह एक दम दूर हो गया । इतना ही नहीं, वे पड़ोसी राष्ट्रों के साथ स्पर्द्धा का बर्ताव करने लगे । किसी बालक के अल्हड़पने की चेष्टा को, वयोवृद्ध लोग कौतुक की दृष्टि से देखते हैं, और उधर विशेष ध्यान नहीं देते, इसी प्रकार का कार्य

जर्मनी के पड़ोसी वयोवृद्ध राष्ट्रों ने आरंभ में किया।

युद्ध में बहुत से लोग घायल हुए और नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होकर हजारों तरुण पुरुष कुसमय कराल काल के गाल में चले गए। इस प्रकार चारों ओर जर्मनी की दुर्दशा दृष्टिगोचर होने लगी। परंतु थोड़े समय में ही युद्ध का घाव, सृष्टि के नियमानुसार भर आया। "उद्योग धंधों की उन्नति शीघ्रता से होने के कारण युद्ध की प्राणहानि शीघ्र पूरी हो जाती है" इस सिद्धांत को जर्मनी ने शीघ्र सच्चा करके दिखला दिया। फ्रांस के साथ युद्धारंभ होने से पहले, सात आठ वर्ष तक जर्मनी आस्ट्रिया से लड़ता रहा। उस समय जो सैनिक तैयारियां जर्मनी ने की थीं, वे बराबर उसी तरह बनी रहीं और उनका उपयोग फ्रांस के साथ युद्ध के समय किया गया। इस युद्ध में विजय लक्ष्मी ने जर्मन वीरों के गले में जयमाल डाली। परंतु इस विजय से वे उन्मत्त न होकर युद्ध के बाद भी उद्योग भूमि में अपना पराक्रम दिखा कर वहाँ भी विजय-श्री प्राप्त करने के कार्य में मन, वचन, कर्म से लग गए। जो धन लोगों ने अपने घरों में गाड़ रक्खा था वह बाहर निकाला गया और अच्छी पूंजी लगा कर नए नए कारखाने खोले गए। इन कारखानों से पूंजी लगाने-वालों को भी अच्छा लाभ होने लगा। अब क्या था, अधिक साहस और जोखिम का काम करने का भी उनमें उत्साह पैदा हो गया। जो गांव और शहर अब तक पीछे पड़े हुए थे वे भी आगे आने का उद्योग करने लगे। वहां लोगों की आबादी और सम्पत्ति वर्षा-काल की नदियों के समान बढ़े

वेग से बढ़ने लगी। जर्मनी की राजधानी बर्लिन की जनसंख्या सौ वर्ष पहले एक लाख साठ हजार थी। परंतु यह संख्या १९०५ में २० लाख चालीस हजार हो गई। बर्लिन नगर में तो सम्पत्ति का पानी ही बरसने लगा। शहरों की इस उन्नति के कारण वहां जमीन का मूल्य भी खूब अधिक बढ़ गया। अतएव ग़रीब लोगों को रहने के लिये जगह की बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई। शहरों में और शहर के बाहर, आस पास, मकानों का किराया इतना अधिक बढ़ गया कि मध्यम और ग़रीब स्थिति के लोगों को उचित किराए पर रहने के लिये, मकान कैसे मिलेंगे, यह विकट प्रश्न लोगों के सामने आकर उपस्थित हो गया।

शहरों की संपत्ति के साथ साथ जनसंख्या की भी वृद्धि हुई है। गत पचास साठ वर्षों में, जितनी जनसंख्या बढ़ी उसका प्रसार उद्योग धंधों में, जो प्रांत आगे थे, उनमें हुआ। सन् १८५५ और १९०५ इन दो सालों की जनसंख्या के अंकों को देखने से पाया जाता है कि कृषि प्रधान प्रांतों में जितनी जन संख्या बढ़ी है उससे कई गुनी अधिक जनसंख्या व्यापार करनेवाले प्रांतों की बढ़ी है।

जर्मनी के उद्योग-युग का आरंभ होने से पत्थर के कोयले, लोहे और अन्य खनिज पदार्थों की पैदावार बहुत अधिक होने लगी। जर्मनी के कारखानों में पत्थर का कोयला जितना काम में लाया जाता है उतना क़रीब क़रीब जर्मनी की खानों से ही निकाला जाता है। कुछ थोड़ा सा, नब्बे लाख टन, इंग्लैंड से भी आता है। परंतु कोयले के लिये

भी अपने को इंग्लैंड का मुँह ताकना न पड़े, इस बात का जर्मन कोयले के व्यापारी, बराबर प्रयत्न कर रहे हैं। कोयले के व्यापार की अपेक्षा लोहे का व्यापार बहुत अधिक होता है। अतएव लोहे के बहुत से कारखाने जर्मनी में पाए जाते हैं। अलावा इन दो के तांबा, जस्ता, सीसा, पोटाश, सास्ट भी पहले की अपेक्षा सब खानों से अधिक निकाला जा रहा है। परंतु इन चीजों की रवानगी की अपेक्षा आमद अब भी ज्यादा है।

जिस उद्योग की ओर इंग्लैंड का विशेष ध्यान है वह उद्योग जहाज और नौका-निर्माण है। परंतु वर्तमान समय में जर्मन लोगों का भी इस ओर विशेष ध्यान गया है और वे अधिक परिश्रम के साथ इस कार्य को करने में संलग्न हो रहे हैं। जहाज बनाने के काम में जो विदेशी सामान काम में लाया जाता है, उसे काम में न लाकर उसकी जगह पर स्वदेशी सामान काम में लाया जाय, इस ओर भी जर्मनों का विचार आकर्षित हुआ है। उन्हें हर साल अपने इस विचार में सफलता भी मिल रही है। एक सरकारी रिपोर्ट में इस बाबत लिखा गया है—"जहाज बनाने के काम में आने योग्य लोहे के पत्रों के देश से ही प्राप्त हो जाने से उसके लिये विदेश का अर्थात् इंग्लैंड का मुख ताकना नहीं पड़ता, यह बड़े आनंद की बात है"।

यदि संसार में उच्च कोटि के जहाज कहीं बनते हैं तो वह इंग्लैंड ही में। वहां पर समुद्र के किनारे, बंदरगाहों में, खराब जहाज कभी तैयार होकर डाला ही नहीं जाता; आज पचीस

वर्ष हुए, जब लोगों के ये विचार थे। टाइन (Tyne) और क्लाइड (Clyde) में जहाज तैयार करनेवाले लोगों के हाथ का मुकाबला संसार में कभी कोई नहीं कर सकता, यह बात बहुत प्रसिद्ध थी। परंतु जब जर्मनी के कारखानेवालों ने अच्छे जहाज बनाने और इस व्यवसाय में इंग्लैंड का मुक़ाबला करने का निश्चय किया तब पहले पहल उन्हें यही चिंता उत्पन्न हुई कि इतना बड़ा काम कैसे हो सकेगा और इसके लिये अगणित धन कहां से और कैसे आवेगा। परंतु उनकी यह चिंता धनिक लोगों की सहानुभूति और कारीगर लोगों की कुशलता से जल्दी दूर हो गई। आज, अब उनकी यह दशा हो गई है कि जर्मन लोग अपने देश में काम आने योग्य सारे जहाज स्वयं तैयार करते हैं। इतना ही नहीं, यदि दूसरे देश वाले चाहते हैं तो वे उन्हें भी तैयार करके दे देते हैं। "जहाज बनाने का कारोबार यदि जर्मनी ने आरंभ न किया होता तो युद्ध पोतों को बनाए रखने की प्रबल इच्छा का कोई काम न था।" आज ३५ वर्ष पहले एडमिरल स्टाश ने ये उद्गार निकाले थे। इससे उनकी सच्ची दूर-दर्शिता प्रगट होती है। इस कार्य में जितनी अधिक उन्नति होती गई, जर्मनी की समुद्री शक्ति उतनी ही अधिक बढ़ती गई। सन् १९०६ में बाल्टिक समुद्र के एक बंदरगाह की एक निजी कंपनी ने "नेवी लीग" से यह प्रश्न किया था कि "यदि रणपोत तैयार करने की हम तुम्हें आज्ञा दें तो एक साल में कितने जहाज तैयार करके तुम दे सकते हो?" इस प्रश्न के उत्तर में लीग ने कहा था—"हम अपने छ बड़े बड़े कारखानों

में १५ लड़ाई के जहाज प्रति वर्ष तैयार करके दे सकते हैं ?" इस पर से पाठक यह अनुमान लगा सकते हैं कि कारखाने-वालों को कितना लाभ इस काम से होता होगा ! सारे राष्ट्र का ध्यान अपनी नाविक शक्ति बढ़ाने की ओर लगा हुआ है। चिर काल से समुद्र पर इंग्लैंड का स्वामित्व क़ायम है, उसे नष्ट करने का जर्मनी ने पूरा निश्चय कर लिया है; यह बात अब स्पष्ट दिखाई दे रही है।

जिन उद्योग धंधों का ऊपर वर्णन किया जा चुका है, उनके अलावा बिजली के कारखानों की भी राक्षसी बाढ़ हो रही है। इस व्यवसाय को करनेवाली मुख्य कंपनियाँ तो कम हैं परंतु एक कंपनी का ही मूलधन पचास लाख पाउंड है। रक्षित धन और लोगों के दिए हुए कर्ज़ की रक़म चालीस लाख नक़द इससे अलावा है। इस पर से ही यह बात मालूम हो सकती है कि यह कंपनी कितनी धनवान् है। बिजली की ट्रांवे, लाइट रेलवे, म्युनिसिपाल्टियों के लिये बिजली का स्टोर करने, बिजली के यंत्र तैयार करने आदि का सब काम यह कंपनी करती है। जर्मनी के बाहर अपने व्यापार की वृद्धि हो, इस उद्देश्य पूर्ति के लिये इस बड़ी कंपनी ने और कई एक छोटी छोटी कंपनियाँ तैयार की हैं। इन कंपनियों से व्यापारिक उन्नति में बहुत सहायता पहुँचती है।

इसी प्रकार रासायनिक द्रव्य, सूती और रेशमी कपड़ा, कागज़ और शक्कर तैयार करने के भी बहुत से कारखाने खोले गए हैं और उन कारखानों में तैयार किया हुआ माल सारे संसार में अब खप रहा है। स्थान की कमी के कारण

उन सब कारखानों का ब्योरा देने में हम असमर्थ हैं इसी लिये केवल उनके नाम मात्र का उल्लेख किया गया।

थोड़ी थोड़ी पूंजी के छोटे छोटे बहुत से कारख़ाने खोलने की अपेक्षा अधिक पूंजी लगा कर बड़े बड़े कारख़ाने थोड़े भी कायम करने से अधिक लाभ होता है, इस बात का अनुभव जब जर्मनी को हुआ तब छोटे छोटे कारखानों को बंद करके बड़े बड़े कारख़ाने कायम किए गए। परंतु इस पर से यह बात कही नहीं जा सकती कि जर्मनी में छोटे छोटे कारख़ाने अब बिलकुल नहीं हैं। छोटे छोटे कारख़ाने भी हैं और हाथ से काम करनेवालों की भी संख्या कुछ कम नहीं है। हाथ से काम करनेवाले एक मालिक, उसके पास काम करनेवाले पांच छः नौकर, व्यवसाय सीखने के लिये पास रहनेवाले पांच चार बालक, इस प्रकार हाथ से काम करनेवाले कारखानों की भी अच्छी धूम है। वर्तमान स्थिति के अनुसार बड़े बड़े कल कारखानों का मुक़ाबला करने के लिये प्रयत्न हो रहा है। उनकी योग्यता और परिश्रम के अनुसार उन्हें लाभ नहीं होता, यह बात तो स्पष्ट ही है; परंतु इतने पर भी वे हताश न हो कर अपना काम बराबर करते जा रहे हैं, यह बात उनके लिये बहुत कुछ प्रशंसास्पद है। आज कल क़रीब क़रीब पचीस लाख स्त्री पुरुष मिल कर इस प्रकार के व्यापार पर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बिजली और भाप के ज़ोर से चलनेवाले यंत्रों का मुक़ाबला करने का उनका प्रयत्न देख कर उनके विषय में किस के मन में करुणा उत्पन्न हुए बिना रह सकती है, क्योंकि आज नहीं तो कल, कभी न कभी उनको यंत्रों के

मुक़ाबले में हार खानी ही पड़ेगी। ये अमिट ब्रह्माक्षर उनके कपाल में लिखे हुए हैं। परंतु तो भी वे अपने प्रयत्न से बाज़ नहीं आते। हां, यह प्रश्न भिन्न है कि यांत्रिक शक्ति के बनिस्बत हाथ से किए हुए काम द्वारा साम्पत्तिक अवस्था, सामाजिक अवस्था और स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है या हानि? परंतु इस प्रश्न का विचार यहां पर अप्रासंगिक है।

यांत्रिक शक्ति के सामने, छोटे मोटे हाथ से चलनेवाले कारख़ानों का नाश होगा, यह स्वभाव सिद्ध बात है। परंतु इस नियम के लिये भी कुछ अपवाद है। अर्थात् उनके मुक़ाबले में हाथ के कारखानों का नाश न होकर उलटा लाभ होता है। चाकू, छूरी वग़ैरह लोहे के हथियार तथा अन्य छोटे मोटे काम तैयार करने के कारखाने जहां बिजली की शक्ति की सहायता से चलते हैं वहां पर हस्तकौशल की भी जरूरत है। और इस कारण इन कारखानों के जीवन पर बहुत से हाथ द्वारा चलनेवाले कारखाने चल रहे हैं और उनके द्वारा बहुत से कुटुंबों का भरण पोषण होता रहता है। रेशमी कशीदे के कारखाने जहाँ चलते हैं वहां भी थोड़ी बहुत हाथ के काम की जरूरत पड़ती ही है।

वर्तमान साम्पत्तिक स्पर्धा के समय में हाथ से काम करने-वाले कारखानों के अनुकूल नियम या कानून सरकार ने यदि न बनाए होते और स्वयं हाथ के कारखानेवालों ने सहन-शक्ति न दिखाई होती तो आज जर्मनी के हाथ के कारखाने सब के सब रसातल को चले गए होते। सन् १८६१ ईस्वी में प्रति हजार २८·९ कारखाने स्वतंत्र हाथ से चलनेवाले

प्रशिया में थे; परंतु, अब यह संख्या १८ पर पहुँच गई है। कपास का सूत निकालने, कपड़ा बुनने, पीपा, टप, लोहे की कीलें तैयार करने, रस्सी और बटन बनाने, आदि के कारखानों का तो नाश पहले ही हो चुका था, परंतु अब कुम्हार, लोहार, बढ़ई, सुनार और चमार आदि के व्यवसाय भी दिनों दिन लंगड़े होते जा रहे हैं। जेबघड़ी और दीवालों पर लटकाई जाने योग्य बड़ी बड़ी घड़ियाँ बनानेवालों पर अभी कोई बड़ी आपत्ति नहीं पड़ी है। उनका व्यवसाय पूर्ववत् बराबर ज्यों का त्यों चला जा रहा है। हाथ से चलनेवाले कारखाने बने रहें, इस अभिप्राय से एक ही प्रकार के लोगों और व्यवसायियों के लिये परस्पर सहकारी मंडल (Guilds) की स्थापना करके सरकार ने बहुत कुछ उत्तेजना दी है। इस प्रकार के मंडल दिनों दिन अधिक स्थापित होते जा रहे हैं। परंतु इस उपाय से भी हाथ के कारखानों का कितना बचाव होगा यह अभी नहीं कहा जा सकता। कुछ वर्षों के अनुभव के पश्चात जो कुछ परिणाम निकलेगा वही सच्चा समझा जायगा।

हाथ से काम करने की कोई दूकान या कारखाना न खोल कर घर के घर में ही माल तैयार करने का भी एक ढंग है; और इस ढंग का प्रचार गाँवों में अधिक पाया जाता है। इस ढंग के व्यवसाय की दशा अब भी अच्छी है, पर यह बड़े आश्चर्य की बात है। जो लोग सदा किसी न किसी रोग से पीड़ित रहते हैं वे अधिक दिन जीते रहते हैं, यही दशा इन कारखानों की है। हाथ से सीने पिरोने का काम,

घड़ी बनाना, टोपियाँ, गहने, लकड़ी पर नक़्क़ाशी का काम, खिलौने आदि अनेक व्यवसाय इसी ढंग के हैं जो गाँवों में अच्छी तरह चलते हैं। स्त्रियों, बालकों और वृद्ध पुरुषों का जीवननिर्वाह हाथ के कारखानों द्वारा ही होता है। यदि इस व्यवसाय का अंत हो जाय तो इन ग़रीब लोगों को या तो भूखों मरना पड़ेगा या पेट की ज्वाला बुझाने के लिये अपना घरबार छोड़ कर विदेश में मारे मारे फिरना पड़ेगा। वर्त्तमान समय में उनकी दशा बहुत अच्छी है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। परंतु यह बात ज़रूर है कि उन्हें भूखों मरना नहीं पड़ता।

अपने राष्ट्र के लोग भूखों मर रहे हैं और वे इस कष्ट से दुखित होकर रोटी कमाने विदेश जा रहे हैं, यह बात वहाँ की गवरमेंट पसंद नहीं करती। इसीलिये उसने यथाशक्ति ऐसा प्रबंध किया है कि जहाँ तक हो सके हाथ के कारखाने नष्ट न होने पावें। किस गाँव में कौन सा व्यवसाय अच्छा चल रहा है, यह बात ध्यान में रख कर, गाँव गाँव में शिल्प-शालाएँ स्थापित की गई हैं। और चलते फिरते शिक्षकों की व्यवस्था की जाकर नवीन पद्धति से शिक्षा-प्रचार की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा कुसमय पर सरकार धन द्वारा भी सहायता पहुँचाती है। बव्हेरिया प्रांत में हाथ के कारखाने बहुत से हैं। वहाँ पर सरकार ने चलते फिरते शिक्षकों को नियत किया है। ये शिक्षक गाँव गाँव में घूम घूम कर यह देखते हैं कि कोरी और जुलाहे कपड़ा बुनने का काम किस तरह करते हैं और पुराने करघों में क्या सुधार हो

रुकता है, यह बात उनको बताते हैं और नौसिखवों को बुनने का काम सिखाते हैं। इतना ही करके वे शांत नहीं होते, जुलाहों के पास से जो शहरों के व्यापारी माल खरीदते हैं, उन्हें वे कभी कभी धोखा देकर फुसलाते हैं; अतएव वे उन्हें धोखा न दे सकें और न फुसला सकें, इसकी व्यवस्था करके उनके माल का उचित मूल्य दिलाने का भी वे प्रयत्न करते हैं। अलावा इसके वे शिक्षक इस बात पर भी ध्यान रखते हैं कि किस माल की कहाँ अच्छी खपत हो सकती है। इसका पता भी वे कपड़ा बुननेवालों को देते रहते हैं जिससे वे अपने माल को वहाँ भेज कर लाभ उठा सकें। किस तरह के माल की बाजार में अच्छी खपत हो सकेगी, इस बात को भी वे बताते रहते हैं, और वे लोग भी शिक्षकों के सूचनानुसार ही माल तैयार करते हैं। इस व्यवस्था से अच्छा माल तैयार होता है और घर में पड़ा पड़ा सड़ा नहीं करता, अच्छे भाव पर बाजार में जाकर बिक जाता है।

चौथा अध्याय ।

विदेशी और समुद्री व्यापार ।

विदेशी व्यापार की जर्मनी में कितनी उन्नति हुई है, इसका विवरण सरकारी रिपोर्टों को देखने से स्पष्ट मालूम होता है और उसी पर से यह भी कल्पना की जा सकती है कि उद्योग धंधों और कारखानों ने वहां कितनी उन्नति की है। यदि विस्तारपूर्वक व्यापार संबंधी सालाना ब्योरा दिया जाय तो संभव है, पाठकों को अरुचिकर होगा। अतएव पचास वर्ष पहले साल की आमद और निकासी क्या थी और अब क्या है, उन्नति की कल्पना करने के लिये इतना दे देना ही काफ़ी होगा। सन् १८६० में प्रति मनुष्य पीछे आमद १ पौंड १२ शिलिंग ६ पेंस और निकासी २ पौंड १ शिलिंग ५ पेंस थी। परंतु सन १९०७ से आमद ७ पौंड २ शिलिंग १० पेंस और निकासी ५ पौंड १५ शिलिंग हो गई। *

---

* यदि विशेष जानाना हो तो देखिए:—

जर्मनी का व्यापार (१८६०–१९०७)

	१८६०	१९०७
	पौंड	पौंड
एक मास की आमद	५,४७,५०,०००	४४,३०,००,०००
एक साल की निकासी	७,००,००,०००	३५,६०,००,०००

इस पर से यह बात साबित होती है कि जर्मनी का आमद का व्यापार निकासी के व्यापार से अधिक है। अर्थात् जर्मनी में विदेश जानेवाले माल की अपेक्षा विदेश से आने वाला माल अधिक है। प्रति वर्ष कारखानों में तैयार हुआ माल जर्मनी से विदेश जब अधिक जाने लगा तब विदेश से कच्चे माल की भी आमद बढ़ गई, यह एक स्वाभाविक बात है। जर्मनी का व्यापार अकेला युरोप में होता हो, यह बात नहीं है। सारे संसार में उसका व्यापार फैला हुआ है। सारे संसार के व्यापार का ब्योरा देना बड़ा कठिन काम है। अतएव भारतवर्ष के साथ उसका कितना व्यापार है, बस इतना ही बता देना हम काफ़ी समझते हैं। परंतु यह ब्योरा भी हमारे पास हाल का नहीं है, सन् १९०५ अर्थात् दस वर्ष पुराना है। परंतु इस पर से ही पाठक बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। उस वर्ष बृटिश इंडिया से १३८·९० लाख रुपए का माल भारत से जर्मनी को गया और जर्मनी से ४३ लाख रुपए का माल भारतवर्ष में आया। आमद कम और निकास ज्यादा, यह व्यापारिक दृष्टि से उचित हुआ या अनुचित इसे अर्थशास्त्रवेत्ता लोग

जर्मनी का व्यापार।

	१९११	१९१२	१९१३
	दस लाख पौंड	दस लाख पौंड	दस लाख पौंड
एक साल की आमद	४७८·२	५२५·६	५२५·८
एक साल की निकासी	३९८·२	४४०·३	४९५·३

ही बता सकेंगे, हम इस अवसर पर इस प्रश्न का विचार यहां नहीं करना चाहते ।

जर्मनी का विदेशी व्यापार बढ़ने से, माल ले जाने और लाने के लिये जहाज़ों की भी संख्या बढ़ी है। संसार में सन् १८४७ में जितने व्यापारी जहाज़ थे उनमें जर्मन व्यापारी जहाजों की संख्या प्रति सैकड़ा ५.२ थी परंतु सन् १९०५ में यह संख्या प्रति सैकड़ा ९.९ हो गई। जर्मन लोगों ने नाना प्रकार के व्यवसाय खोल रक्खे हैं, उनमें जहाज़ बनाने का व्यवसाय जर्मन सम्राट् को बहुत पसंद है, और इस व्यवसाय की सब से विशेष उन्नति हो, इसका प्रयत्न वहां बराबर जारी है। हॅमबर्ग और ब्रेमेन के जहाज़ों के कारखानों की जो बहुत अधिक उन्नति हुई है वह राजाश्रय के भरोसे पर ही हुई है। इन कारखानों में बने हुए कुछ जहाजों का आरंभिक जल-पर्यटन का समारंभ राजघराने के पुरुषों द्वारा ही हुआ है। कोई भी बड़ा जहाज़ जब बन कर तैयार होता है तब फिर वह किसी कारखाने का बना हुआ क्यों न हो, जब वह समुद्र में उतारा जाता है तब जर्मन सम्राट् की ओर से मालिक के पास अभिनंदन का तार आए बिना नहीं रहता। जर्मनी में जहाज बनानेवाली एक ऐसी कंपनी है जिसके डायरेक्टरों में ॲडमिरेल्टी के बड़े बड़े सरकारी नौकर शामिल हैं।

व्यापारी जहाजों की संख्या यद्यपि इतनी अधिक बढ़ी है तो भी हमबर्ग का एक व्यापारी पत्र किस प्रकार शोक प्रगट करता है—" इंग्लैंड में नित नए व्यापारी जहाज तैयार हो

रहे हैं; परंतु हमारा देश इसमें सदा की तरह पीछे ही पड़ा हुआ है। जनसंख्या पर ध्यान देने से यह प्रतीत होगा कि गत सोलह वर्षों में जर्मनी ने जितने व्यापारी जहाज तैयार किए उससे पचगुने इंग्लैंड ने बनाए हैं। इंग्लैंड का विदेशी व्यापार इन्हीं के उत्कर्ष पर अवलंबित है।" इन विचारों के सामने जर्मनी को अब क्या करना चाहिए, यह किसे मालूम है!

सब से बड़े और अतिशय वेग से चलनेवाले जहाज, जैसे इंग्लैंड में हैं वैसे अन्य देशों में अब भी नहीं पाए जाते हैं। जर्मनी के पास अवश्य कुछ जहाज ऐसे हैं; परंतु उनका टनेज (बोझ ले जाने की शक्ति) इंग्लैंड के जहाजों के टनेज के बराबर ही है। बड़े और जल्दी चलनेवाले जहाज तैयार करके समुद्री व्यापार बढ़ाने के काम में जर्मन राष्ट्र विपुल धन खर्च कर रहा है। इसी प्रकार बंदरगाहों का सुधार और नए नए बंदरगाह बनाने में भी वहाँ बहुत कुछ धन लगाया जा रहा है। समुद्र के किनारे पर अथवा बड़ी बड़ी नदियों के किनारे पर जो बंदर हैं, उनको बढ़ा कर उनमें बड़े जहाजों को लाने की व्यवस्था करने की ओर जर्मनों का ध्यान लगा हुआ है। जहाजों के खड़े होने के लिये लकड़ी और पत्थर के घाट और उन घाटों पर आसानी के साथ खड़ी होनेवाली रेलगाड़ियां, माल चढ़ाने और उतारने के यंत्र, आदि सामान जर्मनी में इतने अच्छे हैं कि उन्हें देख कर मनुष्य चकित रह जाता है। जो नदियां समुद्र में सीधी जाकर मिली हैं, उनके किनारे पर के बंदरों को अधिक उप-

योगी और काम का बनाने के लिये वहां बराबर प्रयत्न किया जा रहा है। राइन नदी के किनारे पर मनहिम नाम का एक नगर है। यह शहर कोलन के दक्षिण की ओर करीब करीब १६० मील की दूरी पर है। वहाँ की म्युनिसि-पैलिटी ने औद्योगिक दृष्टि से, इस शहर का महत्व बढ़ाने के लिये, इतना धन खर्च किया है कि उसे देखकर यह बात सहसा मन में उत्पन्न हो जाती है कि जर्मन लोग जिस बात को मन में लाते हैं उस के संबंध में वे क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे, इसका कुछ भी भरोसा नहीं है। मनहिम के लोगों का किया हुआ प्रचंड उद्योग और उस उद्योग से प्राप्त हुए यश को देखकर एल्ब, वेसर और ओडर नदी के किनारे बसे हुए हमबर्ग, ब्रेमन और फ्रेंकफोर्ट सरीखे शहरों ने भी उसी का अनुकरण किया है। यदि व्यापार बढ़ाना हो तो माल को लाने और ले जाने के साधन जितने अधिक और सरल होंगे उतना ही अधिक लाभ होगा, यह तत्व जर्मन लोग अच्छी तरह समझ गए हैं और इसी के अनुसार जिन तीन नदियों का ऊपर उल्लेख किया गया है उनके किनारे रहनेवाले लोगों ने, पुराने घाटों को ठीक करने और नए घाटों को बनाने का उद्योग आरंभ कर दिया है और बड़े साहसपूर्वक वे इस काम को कर रहे हैं।

पाँचवाँ अध्याय।

व्यापार-व्यवसाय में विशेषता।

वर्तमान काल में जर्मनी के व्यापार और वहाँ के उद्योग धंधों की उन्नति की ओर इंग्लैंड के लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। संगीत शास्त्र, काव्य, नाटक, तत्वज्ञान, इन विषयों का ज्ञान संपादन करने के लिये हम लोगों को परिश्रम करना चाहिए और सारे संसार को यंत्र सामग्री, कपड़ा और कपास देने का काम इंग्लैंड के स्वाधीन कर देना चाहिए, यदि ये विचार जर्मनवासियों के होते तो इंग्लैंड वासी जर्मन वासियों से प्रसन्न रहते। परंतु "काव्य शास्त्रविनोदेन" अपना समय व्यतीत न करके जिस उद्देश्यसिद्धि के लिये जर्मन लोग व्यापारी बने हैं उसी उद्देश्य प्राप्ति के अर्थ वर्तमान सांपत्तिक स्थिति उन्होंने किन उपायों से प्राप्त की, और उसकी मूल प्रेरणा कहाँ से हुई, इस विषय पर अंगरेजों को भी विचार करना परमावश्यक है।

पहले यह बात देखनी चाहिए कि वर्तमान समय में जो उद्योगप्रियता जर्मन लोगों में दिखाई देती है वह इंग्लैंड का उदाहरण आगे रख कर उनमें उत्पन्न हुई है अथवा क्या? परंतु थोड़ा सा भी विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जर्मन लोगों ने अंग्रेजों की देखा देखी ही यह उन्नति का कार्य किया है। परंतु अब अंग्रेज लोग कर ही क्या सकते

हैं। जो शिक्षा उन्होंने दी उसी शिक्षा का अनुकरण किया जा रहा है। कुछ वर्ष हुए जब "कलोन गजट" नाम के एक समाचार पत्र ने अपने पाठकों को स्मरण कराया था कि "रेलगाड़ी, गैसवर्क्स, ट्रांवे, और यंत्र सामग्री की दूकानें जर्मनी में खोलने का काम सब से पहले इंग्लैंड ने अपने हाथ में लिया था। उस काम में इंग्लैंड ने वहां करोड़ों रुपया खर्च किया। इस प्रकार जर्मनी की सांपत्तिक सुधार का मार्ग अंग्रेजों ने ही आगे होकर ढूँढ निकाला"। इस पत्र ने जो बात लिखी है वह बिलकुल ठीक है और यह बात प्रमाण सहित साबित की जा सकती है। बर्लिन तथा हमबर्ग आदि बहुत से नगरों में इंग्लैंड ने पानी को इकठा कर दिया। अंगरेजी भाषा से "ट्रांवे" शब्द जर्मन भाषा में ज्यों का त्यों प्रयोग किया जाने लगा हैं। इस से यह साबित होता है कि जर्मनी में पहले पहल ट्रांवे किसने जारी की। सूती और रेशमी कपड़ा बेचनेवाली कई एक बड़ी बड़ी दूकानों के नाम अब भी इंग्लिश है। दक्षिण जर्मनी में कपास के व्यापार का मुख्य स्थान मुलहासन (Mulhausen) है। उस नगर की एक बड़ी सड़क का नाम अब भी "मेंचेस्टर स्ट्रीट" कहा जाता है।

'मेंचेस्टर चेम्बर आफ कामर्स' की एक बैठक में जो १३ दिसंबर सन् १८३८ को हुई थी, मि० रिचर्ड कावडेन ने जो भाषण किया था, वह अब भी बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि अंगरेज जर्मनी में जाकर वहां साहसपूर्वक, निर्भयता के साथ, काम अपने हाथ में लेते

हैं और उनको उत्तमतापूर्वक करके बतला देते हैं। परंतु यह दशा देखकर जर्मन लोग बुद्धिमान हो जांयगे, और समय पाकर अंगरेजों की अंगुलियों को अंगरेजों की ही आँखों में घुसेड़ने का प्रयत्न करने में वे कोई बात उठा नहीं रक्खेंगे। काबडेन की भविष्यवाणी के पश्चात् भी, बहुत वर्षों तक, अंगरेज लोग जर्मनी में आते जाते रहे। जब तक जर्मन लोगों को ग़रज़ थी, तब तक उन्होंने अंगरेज लोगों के साहस, बुद्धिमत्ता और धन से लाभ उठाया। परंतु जब शिष्य ने गुरु से अपना सारा मतलब निकाल लिया तब उसने अपनी आँखें फेर लीं। जर्मन शिष्यों के समान नरम परंतु उद्यमशील विद्यार्थी अंगरेज शिक्षकों को बहुत ही कम मिले होंगे। विद्यार्थीदशा समाप्त होते ही, उन्होंने, स्वतः साहसपूर्वक बड़ी बड़ी जिम्मेदारियों के काम अपने हाथ में ले लिए और अपने गुरु को बता दिया कि अब आपकी इस पाठशाला में आवश्यकता नहीं है। विद्यार्थियों को हर तरह पर योग्य हो गया देख, "शिष्यादिच्छेत्पराजयम्" इस वाक्य का अनुभव प्राप्त कर के गुरु जन भी धीरे धीरे अपने देश को वापस लौट आए। अपने कारखानों में, अपने देश के निर्वाह योग्य ही, सामान जर्मन लोग तयार करेंगे; आरंभ में अंगरेज लोगों का यही अनुमान था। परंतु यह उनकी भूल थी। क्योंकि थोड़े समय में ही, उन्होंने, अपने देश की आवश्यकताओं को पूरा करके, अपना ध्यान, विदेशी व्यापार को हस्तगत करने की ओर आकर्षित किया। उन्होंने जो काम अपने देश में, हाथ में लिए थे, उनको अच्छी तरह कर लेने के कारण उन-

का साहस और भी अधिक बढ़ गया था। अतएव जो बाजार अबतक अंगरेजों के हाथ में था, उसे उन्होंने उनके हाथ से निकाल कर अपने हाथ में लेने का प्रयत्न आरंभ किया। इस कार्य में उन्हें सफलता भी मिली। अंगरेज व्यापारियों को हटा कर जर्मन व्यापारियों ने अपना अधिकार जमा लिया। यह कार्य किस उत्तमता से किया गया, इसका विचार करने का ही बस हमारा यहाँ पर इरादा है।

जर्मन राष्ट्र इस समय पूर्ण ऐश्वर्यशाली है। संसार की सांपत्तिक स्पर्धा में वह अग्र-स्थान प्राप्त करना चाहता है और इस संकल्प की पूर्ति के लिये वह अपने उद्योग धंधों और व्यापार की उन्नति में अपनी संपूर्ण शक्ति लगा देना अपना कर्तव्य समझता है; और जर्मनी की उन्नति का यही मूल मंत्र है। व्यापार विषयक पहला सा उत्साह, आग्रह, अथवा आदर वर्त्तमान समय में भी अंग्रेज जाति में बना हुआ है अथवा नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है! जर्मनी की तो व्यापार की ओर लौ लगी हुई है। जब एक बार मनुष्य व्यापार में अपना पैर फँसा देता है तब वह अपनी सारी लाज, शर्म एक ओर रख कर रात दिन उसी की चिंता में मग्न रहता है। "व्यापार व्यवसाय कुछ बालकों का खेल नहीं है। कुछ दिन किया, कुछ दिन बाद छोड़ दिया। और न व्यापार व्यवसाय सुख चैन की वस्तु ही है।" ये विचार जर्मन व्यापारी-मंडल के हैं। अपने कार्य में यश संपादन किए हुए जर्मनी के व्यवसायी लोग, फिर वे चाहे कारखाने-वाले हों, अथवा व्यापारी हों, गर्मी की प्रचंड हवा में, समुद्र-

पर्यटन को निकलें चाहे किसी रम्य सरोवर के किनारे जाकर रहें, अथवा पहाड़ की ठंढी हवा में जाकर विश्राम लें, परंतु अपने काम को वे कभी कहीं भी भुलाते नहीं हैं। कुछ देशों में 'वीकएंड' छुट्टी की जो रवाज चली आती है, वह उनकी राय से राष्ट्र की अवनति और कमज़ोरी का लक्षण है। साल में ग्यारह महीने, अपने कारखाने अथवा बैंक या दूकान में बराबर काम करने पर भी वहां के लोग क्षण मात्र, अपना समय नष्ट नहीं करना चाहते। व्यवसाय में यश संपादन करने के लिये उन्हें कैसा ही परिश्रम करना पड़े तो भी वे शांतिपूर्वक सहजप्राप्त इस भाव से, बिना किसी प्रकार का आलस्य प्रकट किए काम करते रहते हैं।

एक बात और है। उद्योग धंधे की उन्नति में अग्रसर हुई जर्मनों की यह पहली ही पीढ़ी है, यह बात जो कही जाती है, सत्य नहीं है। उस देश में लोहे, फौलाद और शिल्पकला के कुछ कारखाने बहुत पुराने हैं। और कुछ व्यवसाय की दूकानें, फिर वे छोटी ही क्यों न हों, पचास, साठ और कोई कोई तो १०० वर्ष तक की पुरानी हैं। परंतु वर्त्तमान समय में जो उन्नति उन्होंने की है, उसके पतन का अभी कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता।

सबों के आगे निकल जाने का जो प्रबल प्रयत्न जर्मन लोग कर रहे हैं, उसके अनुकूल एक और बात उत्पन्न हो गई है। वह यह बात है कि, वर्तमान समय के अनुकूल साधनों की योग्यता बड़ी कुशलता और मार्मिकता के साथ किस प्रकार से प्राप्त करनी चाहिए, यह बात वे पूरी तौर पर जान गए

हैं। साधारण समझ के अंगरेजों का यह विचार है कि व्यापार एक गतानुगतिक न्याय से साध्य करने योग्य व्यवसाय है। परंतु जर्मन लोगों के मत से यह एक शास्त्र है। व्यापार एक कला है और उसे साध्य करने के लिये शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करना चाहिए। संसार का सारा व्यापार पुरानी प्रतिस्पर्द्धा से, पीछे हटा कर अपने हाथ में लेने का उनका पूर्ण विचार है और उसकी प्राप्ति के लिये वे जिन उपायों की योजना करते हैं और जिस मार्ग का अवलंबन कर रहे हैं, उसके मूल में एक मुख्य तत्त्व है। यह तत्त्व केवल व्यापार में ही नहीं है, अन्य प्रकार के बर्ताव में भी इसका उपयोग किया जाता है। वह तत्त्व यह है कि हर एक काम में चाहे वह नित्य का व्यावसायिक कार्य हो अथवा उससे भिन्न हो, चिकित्सा बुद्धि द्वारा पहले उसकी परीक्षा करनी चाहिए और पश्चात् उसे साध्य करने के लिये उद्योग करने में लगना चाहिए।

स्थूल दृष्टि से यदि हम विचार करें तो मालूम होगा कि औद्योगिक विषयों में जहां जहां जर्मनों ने अन्य लोगों पर प्रभुत्व जमाया वहां वहां उसके मूल में तीन कारण दिखाई पड़ते हैं—(१) जर्मन माल का अन्य देशों के माल की अपेक्षा सस्तापन, (२) उनका उत्तम प्रकार का अथवा प्रसंगानुरूप उत्तम व्यवहार, (३) ग्राहकों को पैदा करके उन्हें अपने हाथ में रखने का प्रशंसनीय ढंग। इन बातों में माल का सस्तापन, यह विषय ऐसा है कि इस पर सब से पहले विचार करना चाहिए। इंग्लैंड के लोगों की अपेक्षा जर्मन लोगों की

रहन सहन देखी जाय तो उसमें कम आडंबर दिखाई पड़ेगा। जर्मन मनुष्य चाहे गरीब हो, चाहे मध्यम स्थिति का हो, अथवा अमीर हो, उसके व्यवहार में अधिक आडंबर नहीं दिखाई पड़ेगा। अधिक परिश्रम न करके और न बहुत सा समय नष्ट करके इच्छानुसार धन खर्च करके आनंद-पूर्वक जीवन व्यतीत करने का कार्य यद्यपि वहां आरंभ हो गया है परंतु तो भी धनी लोगों की रहन सहन सादी और कम खर्चीली है। केवल आनंदपूर्वक सुखोपभोग के लिये अतर के चिराग़ जलानेवाले बहुत कम लोग वहां पाए जाते हैं। इसी कारण यदि जर्मन व्यापारियों को कम लाभ भी हुआ तो भी वे सहसा डगमगाते नहीं। परंतु अंगरेज व्यापारियों की दशा इससे विपरीत होने के कारण यदि खूब अधिक लाभ हुआ तो ही वे प्रसन्न रह सकते हैं। थोड़ा लाभ होने पर उनका ठाठ बाट का संसार चलता नहीं। इंग्लैंड और जर्मनी में एक और बहुत बड़ा अंतर है; वह यह कि जर्मनी के कारीगरों और मजदूरों को इंग्लैंड के कारीगरों और मजदूरों की अपेक्षा अब भी कम मजदूरी मिलती है। "हमें अधिक मजदूरी मिलनी चाहिए, काम करने के घंटे कम होने चाहिएँ" ये बातें अब कुछ दिनों से जर्मन मजदूर करने लगे हैं और कुछ सुधार भी हुआ है, परंतु इंग्लैंड के हिसाब से जर्मन कारीगरों और मज़दूरों को वेतन अब भी बहुत कम मिलता है और काम भी उनको अधिक और देर तक करना पड़ता है। परंतु इसी के साथ ही इतना अवश्य हुआ है कि बीमारी, अपघात, वृद्धावस्था आदि उपस्थित होने पर

कानून के अनुसार उनके जीवन का बीमा करा दिया जाता है। कारखानों में काम करनेवाले बालकों की शारीरिक दशा ठीक रहे, इसके लिये भी अब नियम बना दिए गए हैं। परंतु उपरोक्त विषयों में जितनी अच्छी व्यवस्था इंग्लैंड में है, वैसी जर्मनी में नहीं है। परंतु व्यापार के अनुकूल दशा जैसी अब है वैसी ही बनी रहेगी इस का अभी कोई भरोसा नहीं है। पेट भरने का खर्च दिनों दिन बढ़ता जा रहा है और मजदूर पेशा लोगों की "संघ-शक्ति" बढ़ती हुई "ट्रेडस यूनियन" के समान उनकी मत-संस्थाएँ तैयार होती जा रही हैं। ऐसी संस्थाओं के स्थापित हो जाने पर मज़दूरों को यह घमंड हो जाता है कि मालिकों को हमारी बात सुननी ही चाहिए। इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि माल तैयार होने का खर्चा इंग्लैंड के बराबर जर्मनी में भी पड़ने लगेगा। परंतु इस विषय का विचार हम विस्तारपूर्वक एक अलग अध्याय में करना चाहते हैं क्योंकि सांगोपांग विचार करने से ही इस विषय के समझने में सरलता होगी, यहां पर तो केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

जर्मनी के कारखानों में यंत्र सामग्री और व्यवसाय में काम आनेवाला सामान, नवीन पद्धति से तैयार किया जाता है, यह बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। नवीन पद्धति और शास्त्रीय शोध के आधार से तैयार किए हुए यंत्र आदि कैसे अलौकिक पदार्थ हैं, यदि यह किसी को देखना हो तो उसे जर्मनी के किसी लोहे या फौलाद के कारखाने में जा कर देखना चाहिए। वहां पर सब पदार्थों के देखने से जर्मन लोगों की

बुद्धि, उनका अथक उद्योग और कार्यकुशलता पर आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। अंगरेज भट्टियों द्वारा तैयार किया हुआ लोहा (Pig-iron) जर्मन लोहे के मुकाबले में कम दर्जे का होता है। जर्मनी का जो लोहा तीसरे नंबर का है वह इंग्लैंड का पहले नंबर का है। "लंदन टाइम्स" में ७ अप्रैल सन् १९०६ को एक सज्जन ने एक लेख में यह बात प्रकाशित की थी कि इंग्लैंड के लोहे का नंबर कम क्यों हो गया। उसने बतलाया था कि इंग्लैंड में लोहा तैयार करने की जो पद्धति पूर्वजों से चली आती है, वे उसी लकीर के फ़क़ीर बने हुए हैं। धातु-विद्या (Metallurgy) संबंधी जो नवीन शास्त्र तैयार हुआ है उसी के अनुसार जर्मन लोग शास्त्रीय नियमानुसार अपने कारखानों को चलाते हैं और इसी कारण उनका नंबर ऊंचा हो गया है। उस लेखक का यह सिद्धांत विचार करने पर सच प्रतीत होता है।

यदि इस विषय पर और भी अधिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी कि जर्मन कारखानों में कम लागत से लोहा तैयार होता है। इसका कारण यह है कि लोहा तैयार करने में जिन क्रियाओं को उपयोग में लाना पड़ता है, उन सब को एक इमारत में करने का प्रबंध करके, एक ही आदमी की निगरानी में वह सब काम कराया जाता है। इस बात को हम एक उदाहरण दे कर अधिक स्पष्ट करना चाहते हैं। एक सुई को ही लीजिए। अशुद्ध लोहे को गला कर फिर उसका फौलाद बनाना, पश्चात् सुई तैयार करना और बाद

को उस पर जिला करना, ये सब काम पहले अलग अलग कारखानों में होते थे। अर्थात् चार पांच कारखानों में नाच नाचने के बाद तब कहीं काम लायक सुई तैयार होती थी। एक कारखाने से दूसरे कारखाने में, लाने ले जाने में, खर्चा भी अधिक पड़ता था। लाने और ले जाने का खर्चा सब उसी माल की लागत पर चढ़ता था; परंतु जब यह सब काम एक ही इमारत में एक ही आदमी की निगरानी में होने लगा, तो समय और धन का जो अपव्यय होता था वह बंद हो गया और इस प्रकार के प्रबंध से कम लागत में ज्यादा माल तैयार होने से कम कीमत में वह बेचा जा सका और इससे लाभ भी अधिक हुआ। यह एक छोटा सा उदाहरण है। इसी पर से अनुमान लगाया जा सकता है कि लोहे की बड़ी बड़ी चीज़ें जर्मन लोग किस तरह सस्ती तैयार करके सस्ते भाव पर बेंच सकते हैं।

खर्च कम करने के उद्देश्य से भिन्न भिन्न स्थानों पर चलनेवाले कारखानों का एक स्थान पर लाने का क्रम धीरे धीरे प्रचार में आ जाने से "मिश्रित कारखाने" (Mixed works) दिनों दिन वहां अधिक खोले जाने लगे हैं। यदि इस प्रकार के कारखानों का उत्कृष्ट उदाहरण देखना हो तो क्रुप के कारखाने को जाकर देखना चाहिए। कच्चे लोहे से काम की चीजें बनने तक लोहे के सारे संस्कार इसी एक कारखाने में होते हैं; उसके लिये कहीं बाहर जाना नहीं पड़ता।

मिश्रित कारखाने खुल जाने से अलग जलग काम करनेवाले कारखानों का नाश हो रहा है यह बात सच है; परंतु उनका

नाम निशान मिट गया हो सो नहीं। हां, इतनी बात अवश्य है कि वर्तमान समय में शास्त्रीय शोध का उचित उपयोग किए बिना बड़े बड़े कारखानों का वे मुकाबला नहीं कर सकते, यह बात स्पष्ट है। परंतु हर्ष की बात है कि छोटे छोटे कारखानों के मालिक भी अब इस ओर ध्यान देने लगे हैं और इससे आशा है कि उन्हें लाभ अवश्य होगा।

ऊपर जो तीन कारण बताए गए हैं, उनमें से एक कारण का विचार तो हो चुका, अब दो कारणों का विचार करना और बाक़ी है। किसी बिलकुल नवीन शोध करने की शक्ति जर्मन लोगों के मस्तिष्क में अधिक नहीं है, यह बात सच है; परंतु यदि किसी दूसरे ने कोई नया शोध किया तो उसका उपयोग अपने काम में कर लेने की उनकी कुशलता प्रशंसनीय है। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि जिसमें इस प्रकार की कुशलता है, वही पुरुष असल शोध लगानेवाले की अपेक्षा, अधिक यश प्राप्त कर लेता है। क्या किसी नए अविष्कारकर्ता के धनाढ्य होने का उदाहरण तलाश करने पर मिल सकता है? दूसरे की कल्पनाओं को जांच कर यह निश्चय कर लेना कि कौन सी कल्पना अधिक उपयोगी साबित होगी, बस इतनी चतुरता होने से ही काम चल जाता है। उस कल्पना को अपने कार्य में उपयोग कर के देखने से उसे साध्य करके बता देने पर कार्यसिद्धि अवश्य प्राप्त होती है।

बुनाई के काम, यंत्रशास्त्र और रसायन शास्त्र की ही आज कल जर्मनी में अधिक उन्नति है। इनमें प्रवीणता प्राप्त करने

का श्रेय कल्पना करनेवालों की बुद्धिमत्ता और शोध करने-वाले को जितना मिलना चाहिए उतना देकर उसका उपयोग जिस ढंग से जर्मनी ने किया है, उसे देना चाहिए। व्यापारिक दृष्टि से रसायन शास्त्र का कितना महत्व है, यह बात अंगरेजों के ध्यान में न आने के कारण इंग्लैंड की कितनी अधिक हानि हुई है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती और भविष्यत् में इस हानि की पूर्ति शीघ्र की जा सकेगी, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता। इंग्लैंड के रंग के कारखानों की ओर देखिए। वहां के रंगरेज़ प्राचीन पद्धति के अनुसार ही कार्य किए चले जा रहे हैं। रसायन शास्त्र का ज्ञान उनको बिलकुल नहीं है। एक समय इंग्लैंड में विशेष प्रकार के रँगे हुए कपड़ों की ज़रूरत आ पड़ी। उन्हें तैयार कर देने के लिये एक अधिकारी ने प्राचीन पद्धति से कपड़ा रंगनेवालों से कहा कि—"क्या तुम ये कपड़े नमूने के मुताबिक रँग कर दे सकते हो?" उसने उत्तर दिया—"नमूने के मुताबिक बिलकुल नहीं तो करीब करीब नमूने के बराबर तैयार करके दे सकता हूँ।" तब अधिकारी ने कहा—"नहीं, हमें तो नमूने के मुताबिक ही रँगा हुआ कपड़ा चाहिए।" रँगनेवाले ने उत्तर दिया—"नमूने में जो छटा है उसे मैं नहीं ला सकूँगा, पर काम देखने में अच्छा होगा।" इस पर वह काम परदेशी रँगनेवालों को दिया गया। यह बात कुछ बहुत दिनों की नहीं है।

रासायानिक पदार्थ तैयार करने के कारखानों में, जर्मन लोग शास्त्रीय पद्धति का पूरे तौर पर व्यवहार करते हैं, और

इसी कारण उनका यह व्यवसाय खूब उन्नति पर है और इस काम में उन्हें लाभ भी अच्छा होता है। रासायनिक पदार्थ तैयार करनेवाले कारखानों में चालीस काम करनेवालों की देख रेख करने के लिये एक यूनिवर्सिटी पास रसायनशास्त्र-वेत्ता नियत किया जाता है। इस प्रकार कार्य करने की पद्धति संसार के और किसी देश में नहीं देखी जाती है। बड़े बड़े कारखानों में तो प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई हैं, जो बिलकुल उदाहरण स्वरूप दिखाई पड़ती हैं। इन प्रयोगशा-लाओं में, नवीन शास्त्रीय शोध का काम बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। एक जर्मन लेखक ने बड़े अभिमान के साथ यह बात कही है कि "यदि शास्त्र और हाथ दोनों से होनेवाले व्यवहार की जंजीर कहीं जुड़ी हुई दिखाई पड़ेगी तो वह जर्मनी में, ही दिखाई पड़ेगी। और केवल एक इसी बात पर रसायन का व्यापार और व्यवसाय हमारे देश में बहुत कुछ उच्च दशा को प्राप्त हुआ है।"

जर्मन कारखानेवालों को एक और यशप्राप्ति की कुंजी मिल गई है। जिन लोगों में अपना माल खपाने की उनकी इच्छा होती है, उन लोगों को कैसा माल चाहिए, उनकी रुचि किस प्रकार के माल खरीदने की है, इस बात को जानने का वे लोग बड़ा प्रयत्न करते हैं। ग्राहकों को कारखानेवाले जैसा माल दें उसे उन्हें चुपचाप ले लेना चाहिए, अर्थात् कारखानेवालों के लिये ग्राहक हैं, ग्राहकों के लिये कारखाने-वाले नहीं, यह प्राचीन पद्धति जर्मनी से प्रायः निर्मूल हो गई है। "ग्राहकों के लिये कारखानेवाले हैं" इस तत्व को

वहां के सब व्यापारियों ने स्वीकार कर लिया है। इस तत्व की ओर ध्यान न रखने से इंग्लैंड ने अपने व्यापार का कितना नाश कर डाला, यह बात बताना भी असंभव है। कपड़ा तैयार करनेवाले एक अंगरेजी कारखाने को कुछ वर्ष पहले इस बात का बड़ा अभिमान था कि ग्राहक कितना ही अप्रसन्न हो, परंतु उसके इच्छानुसार माल तैयार करके बाजार में कभी नहीं भेजना। मिल में जब कोई ग्राहक आता तब उसे यही उत्तर मिलता—"हमारे पास जिस रंग का और जितनी लंबाई चौड़ाई का माल है यदि उसे लेना चाहते हो तो प्रसन्नतापूर्वक लो, नहीं तो अपने घर का रास्ता पकड़ो।" इस अभिमान अर्थात् अहंभाव का परिणाम क्या हुआ ? ग्राहक दिनों दिन कम होने लगे। अंत में जब हानि होने लगी तब वह नशा उतरा। परंतु व्यापार में जहां एक बार कला उतरी वहां पुनः पहली अवस्था आने के लिये समय चाहिए। जो भूल आरंभ में हो गई उसके लिये सिवा पश्चाताप के और कोई उपाय नहीं।

परंतु जर्मनी की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। कारखाने-वाले हों अथवा व्यापारी हों, छोटी छोटी बातें देखने में भी वे लोग बड़े दक्ष होते हैं और इसी कारण उन्हें अपने व्यवसाय में यश प्राप्त होता है। ग्राहकों की इच्छा और रुचि के अनुसार वे माल तैयार कर के बाजार में भेजते हैं। ग्राहकों की इच्छा और रुचि सदा बदला करती है परंतु इस पर वे कभी हतोत्साह नहीं होते। उल्टे ग्राहकों को प्रसन्न करने के प्रयत्न में सदा लगे रहते हैं। अपने लाभ पर ध्यान रखकर अपने

आश्रयदाताओं की मर्जी के अनुसार कार्य संपादन करने के लिये जर्मन व्यापारी सदा तैयार रहते हैं। व्यापार के लिये बहुत से परदेशी व्यापारी जर्मनी में पहुँचते हैं। इन लोगों को थोड़ी बहुत जर्मन भाषा अवश्य आती है परंतु जर्मन व्यापारी परदेशी व्यापारियों से उन्हीं की भाषा में बात चीत करके उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं, उनके देश में चलनेवाले सिक्के, माप, तौल आदि में अपने माल की कीमत बताते हैं। यदि पत्र-व्यवहार का काम पड़े तो पत्र-व्यवहार न करके स्वयं उन के पास जाते हैं अथवा ग्राहक की भाषा जाननेवाले अपने किसी गुमाश्ते या एजेंट को भेज कर काम करा लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जो ग्राहक मिला, उसे किसी तरह हाथ से जाने नहीं देते। परंतु अंगरेज व्यापारियों के इस सिद्धांतानुसार कार्य न करने से जर्मनी की अपेक्षा इंग्लैंड का माल विदेश में कम खपने लगा, इसमें आश्चर्य ही क्या है!

अब यह बात पाठकों पर स्पष्ट रूप से विदित होगई होगी कि जर्मन व्यापारियों में कौन से विशेष गुण हैं जो इंग्लिश व्यापारियों में नहीं हैं। ये गुण देखने में तो छोटे मालूम पड़ते हैं परंतु इन गुणों के सम्मेलन का उत्तम प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। अब तक की विवेचना से पाठक यह न समझें कि जर्मन व्यापार की इतनी अधिक उन्नति होने पर भी वे लोग अंगरेजों के काम को आदर-बुद्धि से नहीं देखते। व्यापार-व्यवसाय का मार्ग इंग्लैंड ने ही आरंभ में उनके लिये ढूँढ निकाला, यह बात जर्मन लोग खूब अच्छी तरह जानते हैं और इस संबंध में वे अंगरेज

लोगों को पूज्य बुद्धि से भी देखते हैं। इंग्लैंड के उदाहरण को आगे रख कर काम करनेवाले अब भी कुछ कम लोग वहां नहीं हैं। गुरुस्थानी देश से गुरुद्रोह करनेवाला जर्मन व्यापारी शायद कोई विरला ही दिखाई पड़ेगा।

ऊपर जिन तीन कारणों का उल्लेख किया गया था, उन पर विचार हो चुका। अब एक और दूसरे महत्व के विषय पर विचार करना है। जर्मनी की भिन्न भिन्न रियासतों को स्वयं सार्वभौम सरकार की ओर से उद्योग-धंधों और व्यापार को उत्तेजना देने योग्य व्यवहारोपयोगी सहायता दी जाती है, यह बात खास तौर पर ध्यान देने योग्य है। विदेशी राज्यों में रहनेवाले जर्मनी के राजकीय दूत अवसर पड़ने पर—परंतु लोगों की आँखें बचा कर—व्यापार को सहायता पहुँचाते हैं। संरक्षक-राजस्व-कर के नियम सरकार ने बनाए हैं। उनको एक ओर रख कर यदि देखा जाय तो देश की रेलों को सरकार ने अपने हाथ में रक्खा है। इससे व्यापार और खेती दोनों को अधिक लाभ पहुँचता है। यदि विशेष प्रकार की कोई कठिनाई आ जाय तो सरकार रेलवे के किराए में तुरंत फेरफार करके उस कठिनाई को दूर कर सकती है। विदेश जानेवाले माल पर आसानी के साथ वसूल होने योग्य कर लगाया जाता है जिससे देश का माल विदेश भेजा जाकर लाभ उठाया जा सके। इस प्रकार की व्यवस्था से व्यापार को अधिक उत्तेजना मिलती है। वहां पर जो गैर सरकारी रेलवे कंपनियां हैं, वे सब इस बात की ओर दुर्लक्ष्य नहीं देतीं। आपस के झगड़ों का

बिना किसी पक्षपात के केवल देश के लाभ और सचाई की दृष्टि से तुरंत प्रबंध कर दिया जाता है।

व्यापार को उत्तेजना देने के लिये देश में ही जल मार्ग तैयार करने के लिये सरकार का विशेष ध्यान है। इस काम को बहुत करके सरकार ही करती है। निज के तौर पर लोग इस काम में हाथ नहीं डालते। उत्तरी समुद्र और बाल्टिक समुद्र को एक करने के लिये जो कील नहर तैयार हुई है, उसे सरकार ने ही बनवाया है। यह नहर सन् १८९१ ई० से व्यापार के लिये खुल गई है। कील के समान बड़ी नहर बनाने का काम केवल व्यापारोन्नति के लिये सरकार ने अपने हाथ में लिया था; ऐसे उदाहरण अन्य देशों में बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं। राइन व एल्ब नदी से बड़ी बड़ी नहरें निकालने का काम प्रशिया में अब भी जारी है। लाखों रुपए लगा कर, छोटी छोटी बहुत सी नहरें देश के सब भागों में प्रशिया से निकाली गई हैं। इंग्लैंड में इस प्रकार की नहरें नहीं हैं, यह बात नहीं है; परंतु इंग्लैंड की नहरों में बड़े बड़े जहाज आ जा नहीं सकते, जर्मनी की नहरों में वे जहाज आसानी से आ जा सकते हैं। दोनों देशों की नहरों में यही महत्व का अंतर है।

कारखानेवालों और व्यापारियों को शिक्षा देने के लिये सार्वभौम सरकार और रियासतों की ओर से जगह जगह पर औद्योगिक प्रदर्शनियां होती हैं। किसी किसी रियासत में तो ये प्रदर्शनियां स्थायी कर दी गई हैं और कहीं चलती फिरती रक्खी गई हैं। "ग्रांड डची आफ हेसी"

एक सब से छोटी रियासत है। यहां की आबादी भी बहुत कम है, और बड़ा शहर तो रियासत भर में एक ही है। परंतु वहां पर सन १८३६ से "सेंट्रल एजेंसी फार इंडस्ट्री" नाम की एक औद्योगिक संस्था है। राष्ट्र को औद्योगिक और व्यापारिक जो कुछ बातें जाननी होती हैं, वे इस सभा द्वारा तुरंत जानी जा सकती हैं। आरंभ में इस संस्था का प्रचार बहुत कम था। परंतु जितनी उपयोगिता प्रमाणित होती गई उतना ही अधिक इसका प्रचार होता गया और राष्ट्र में इसका प्रभाव भी बढ़ता गया। औद्योगिक शिक्षा किस पद्धति से दी जाय, इस विषय का ज्ञान अन्य भिन्न भिन्न संस्थाएँ इससे प्राप्त करती हैं। संस्था के पास एक बहुत बड़ा पुस्तकालय भी है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक पदार्थ संग्रहालय और रासायनिक प्रयोगशाला भी हैं। सन् १९०६ में सेंट्रल एजेंसी की निगरानी में १३६ औद्योगिक पाठशालाएँ थीं। अर्थात् जनसंख्या की दृष्टि से एक हजार लोगों के पीछे एक पाठशाला थी। इस प्रकार की संस्थाएँ प्रायः सब रियासतों में पाई जाती हैं और वे अपना काम बड़ी उत्तमता के साथ चला रही हैं।

इस विषय में जितनी उत्तेजना देना संभव है उतनी जर्मन सम्राट् की ओर से दी जाती है। सन् १९०७ में जो भाषण सम्राट् ने मेमेल स्थान पर दिया था उसका सारार्थ नीचे दिया जाता है। पाठकों को उसे पढ़ने से यह ज्ञात होगा कि राष्ट्रीय अभिमान और महत्त्वाकांक्षा श्रोताओं के मन में जाग्रत करने का गुण जर्मन सम्राट् में कितना मौजूद है—

"नवीन अस्तित्व में आए हुए जर्मन साम्राज्य ने इतने थोड़े समय में सब प्रकार का सुधार कर लिया, इसकी कल्पना करना भी सहज नहीं है। इस सुधार की दृढ़ता को देखकर विदेशी बड़ा आश्चर्य करते हैं। हमारे व्यापार का विस्तार बड़ा विस्मयकारक है। भिन्न भिन्न शास्त्रों और शिल्प कलाओं में जो हम लोगों ने शोध किए हैं वे बखान करने योग्य हैं। जर्मनी की भिन्न भिन्न जातियों के लोग परस्पर के भेदभाव को भुला कर अपनी जन्मभूमि के अभ्युदयार्थ एक साम्राज्य में सम्मिलित हुए, यह सब उसी का प्रभाव है। संसार में अग्रस्थान मिलने की जितनी शक्ति हम लोगों में बढ़ती जायगी यह सब ईश्वर का कृपा का फल है, यह बात राष्ट्र के सब लोगों को ध्यान में रखनी चाहिए। यदि ईश्वर की ऐसी इच्छा होती कि हम लोगों के हाथ से कोई महत्कार्य न हो, तो उसने हम लोगों को इतनी शक्ति प्रदान न की होती।" उद्योग-व्यवसाय, व्यापार, जहाज तैयार होना आदि सब बातों की ओर जर्मन सम्राट् का ध्यान लगा रहता है। सारे राष्ट्र में, घूम फिर कर बड़े बड़े कारखानों को अपनी आंखों से देखना और वहां के सारे हाल जानना यह उनका सदा का नियम है। समुद्र के किनारों पर जो जहाज बनाने के कारखानें हैं, उनका सारा हाल उन्हें मालूम रहता है और व्यापारी जहाज कारखानों में कितने तैयार होते हैं, इस ओर उनका सदा ध्यान रहता है।

राष्ट्रीय सांपत्तिक स्थिति सुधारने के काम में सरकार से बहुत प्रोत्साहन मिलता है तो भी व्यापारी लोग संतुष्ट हो

कर आलसी बने बैठे नहीं रहते। स्वावलंबन के महत्व से वे पूरे तौर पर परिचित हैं। प्रायः सब बड़े बड़े शहरों में और उद्योग-धंधों में लगे हुए प्रांतों में "चेंबर आफ कामर्स" नाम की सभाएँ कायम हैं। इन सभाओं का पत्र-व्यवहार सरकार और रेलवे कंपनियों के साथ बराबर होता रहता है। इन सभाओं की अंतरव्यवस्था में सरकार बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करती। परंतु सरकार का इनसे बिलकुल निकट का संबंध होने से व्यापार के महत्व के विषयों में परस्पर विचार और सलाह देने का कार्य इनके द्वारा होता रहता है। इस कारण इन चेंबरों का परराष्ट्रों में अधिक प्रभाव है। उनके द्वारा जो समाचार प्रकाशित होते हैं वे कभी असत्य प्रमाणित नहीं होते, ऐसा व्यापारी संसार को भरोसा है। इंग्लैंड में इस प्रकार की संस्थाएँ सरकार के साथ एकमत होकर काम नहीं करतीं इसी कारण विदेश में उनके कथन की सच्चाई पर पूरा पूरा भरोसा नहीं किया जाता। कुछ वर्ष हुए जब संयुक्त-राज्य अमेरिका के सेक्रेटरी आफ स्टेट ने स्पष्ट तौर पर कहा था—"जर्मनी की चेंबर आफ कामर्स के कथन पर जितना विश्वास हम रखते हैं उतना विश्वास इंग्लैंड की चेंबर आफ कामर्स के कथन पर करना अनुभव से हम असंभव समझते हैं।"

हर एक रियासत की चेंबर आफ कामर्स के नियम अलग अलग हैं तो भी काम करने की पद्धति प्रायः समान है। व्यापार संबंधी हर तरह का समाचार प्राप्त करना और फिर लोगों में उसका प्रचार करना, व्यापारियों के कष्टों और

अभावों को सरकार और रेलवे कंपनियों के अधिकारियों के पास पहुँचाना और उनके काम का निपटेरा करा देना, कस्टम ड्यूटी अथवा अन्य करों पर, जो व्यापार को हानिकारक होते हैं ध्यान रखना, बैंकों से सरलतापूर्वक व्याज की दर से व्यापारियों को धन कर्ज दिलाने का प्रबंध कर देना, इत्यादि हजारों तरह के व्यापारोन्नति संबंधी काम, इन संस्थाओं द्वारा होते रहते हैं। उन्हें अपना ही काम इतना अधिक रहता है कि उन सभाओं के सभासदों को राजकीय विषयों पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता। व्यापार विषयक मामलों में ही वे राजपक्ष अथवा उसके विपक्ष में जा कर सम्मिलित होते हैं। परंतु वह काम हो जाते ही वे राजकीय क्षेत्र से हट जाते हैं और यह समझने लगते हैं कि "हम अच्छे, हमारा काम अच्छा।" इन सभाओं में बर्लिन की सभा बहुत बड़ी है। वह सारे संसार भर में व्याप्त हो रही है। चेंबर आफ कामर्स की सहायता करने के लिये बड़े बड़े शहरों में "इंडस्ट्रियल एसोसियेशन" कायम किए गए हैं। विदेश में व्यापार करनेवाले लोगों ने अपने लिये "एसोसियेशन आफ एक्सपोर्ट फर्म" नाम की सभाएँ खोली हैं। ये सभाएँ प्रशिया और मध्य जर्मनी में ही बहुतायत से पाई जाती हैं। स्टेटिन में आज कई वर्षों से एक बहुत बड़ी संस्था कायम की गई है। यह संस्था विदेश जाने के लिये युवकों को व्यापार विषयक शिक्षा दे कर उन्हें बृटिश उपनिवेशों, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों में अपने खर्च से भेजती है। भेजने के पहले हर एक युवक को

संस्था के प्रेसिडेंट के सामने उनका हस्तस्पर्श करते समय यह शपथ खानी पड़ती है कि "जो विश्वास मुझ पर किया गया है उसका दुरुपयोग मैं कभी नहीं करूँगा। संस्था के कल्याणार्थ, मैं बराबर काम करूँगा।" यह शपथ खाने के बाद वह विदेश भेजा जाता है। विदेश जा कर वहाँ की स्थिति पर उसे सदा ध्यान रखना पड़ता है। निश्चित समय के अंदर स्टेटिन के व्यापार की वृद्धि का क्या कार्य वहाँ किया, इसकी रिपोर्ट उसे भेजनी पड़ती है। इस प्रकार विदेश में गए हुए दलालों के कठिन परिश्रम द्वारा उस नगर का विदेशी व्यापार खूब बढ़ गया है और इस कारण संस्था के संचालकों को इस बात का विश्वास हो गया है कि जो नवीन युक्ति हम लोगों ने निकाली है वह उपयोगी साबित हुई है।

यदि कोई रोजगार लाभदायक समझ पड़े तो फिर उसका पीछा अवश्य करना चाहिए, व्यापार का यह तत्व सारे जर्मन लोगों ने मान लिया है। गत पचीस तीस वर्षों में जर्मनी का विदेशी व्यापार जितना बढ़ा है यदि उसे कोई जर्मनी के कारखानेवालों के दीर्घ परिश्रम अथवा उपयोग का फल न कह कर ईश्वर इच्छा से बढ़ा कहे तो यही कहना पड़ेगा वह मनुष्य इस बात को समझ ही नहीं सका है कि जर्मनी ने व्यापार में जो यश संपादन किया है, उसका मर्म क्या है।

बर्लिन में सरकार ने "कलोनियल स्कूल" नाम का एक विद्यालय खोल रक्खा है। जो उत्साही युवा पुरुष खेती अथवा व्यापार के लिये जर्मन उपनिवेशों में जाकर रहना चाहते हैं,

उन्हें उस विद्यालय में विशेष प्रकार की शिक्षा दी जाती है। विद्यालय में रहनेवाले विद्यार्थियों का खर्चा प्रति वर्ष चालीस पौंड से साठ पौंड तक पड़ता है और बाहर रहनेवाले विद्यार्थियों पर पंद्रह पौंड से तीस पौंड तक खर्च पड़ता है। यह खर्च विद्यार्थियों को होनेवाले लाभ की अपेक्षा बहुत कम है।

व्यवसाय और व्यापार यदि करना है तो सभी को करना चाहिए, अंगरेज लोगों के ऐसे विचार हो रहे हैं। परंतु यह विचार ठीक नहीं, यह सिद्ध करने के लिये एक प्रतिस्पर्धी वर्त्तमान काल में उत्पन्न हो गया है। पर प्रतिस्पर्धी कितना उद्योगी है और अंगरेजों को पीछे ढकेल देने के लिये कौन कौन से उपायों की उसने योजना की है, यह बात अब तक बतलाई गई है। इस प्रतिस्पर्धी के जो दीर्घ प्रयत्न जारी हैं वे शिथिल पड़ जाँयगे अथवा वे अपनी कल्पना का ही त्याग कर देंगे, यदि अंगरेज लोगों के ऐसे विचार हैं तो वे अवश्य उसके जाल में फँस गए हैं। जर्मनी का यह प्रभाव देख कर अंगरेजों को अब चुप चाप आँखें बंद कर के बैठने का समय नहीं है। हाँ, यह सच है कि जब तक इंग्लैंड को कुशल, दृढ़निश्चयी और संपत्तिवान पुरुषों का सहारा है तब तक भय का कोई कारण नहीं है परंतु समय पर ही सावधान हो जाना अच्छी बात है।

छठाँ अध्याय ।

औद्योगिक शिक्षा ।

जर्मनी के प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों की पहले यह समझ थी कि सार्वजनिक शिक्षा की ओर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। परंतु यह विचार ठीक न था, इसे अब सारे राष्ट्र समझ गए हैं। पर अपनी भूल समझने में उन राष्ट्रों को बहुत समय लग गया। परंतु जर्मन राष्ट्र की समझ में यह बात बहुत समय हुआ तभी आ गई थी और वहाँ सर्व साधारण की शिक्षा का काम नियमानुसार सरकार की देख रेख में होने लगा था। इससे जर्मन लोगों को बहुत लाभ पहुँचा। परंतु इस लाभ का महत्व उन्हें उस समय और भी अधिक ज्ञात हुआ जब उद्योग युग का आरंभ हो कर जर्मनी का माल विदेशों में बहुतायत के साथ जाने लगा और उसमें उन्हें स्पष्ट रूप से अधिक लाभ दृष्टिगोचर हुआ। पचीस तीस वर्ष के पहले अर्थात् उद्योगयुग के आरंभ में व्यापारोपयोगी शास्त्र—रसायन शास्त्र—की उपयोगिता का लोगों को ज्ञान ही हुआ था और संपति उत्पादन में बिजली की शक्ति का उपयोग करके जो चाहे वह काम उस से लिया जा सकता है, यह बात अनुभव में आने ही लगी थी कि जर्मनी ने इनके द्वारा लाभ उठाने का कार्य आरंभ कर दिया। परंतु शिक्षा में पीछे पड़े हुए अन्य यूरोपियन

राष्ट्रों को इस नवीन ज्ञान का बहुत समय तक पता ही न लगा। इस कारण उनकी दशा बहुत समय तक ज्यों की त्यों बनी रही। जर्मनी ने शिक्षा संबंधी तैयारियाँ पहले से ही कर रक्खी थीं। अतएव समय अनुकूल आते ही जर्मन लोगों ने सारे संसार का व्यापार हस्तगत करने का उद्योग आरंभ कर दिया और अन्य राष्ट्रों के साथ प्रतिद्वंद्विता करने के लिये अपनी कमर कस कर बाँध ली। जिस प्रकार किसी सेनापति की आज्ञा पाते ही सेना कमर कस कर निकट आती है उसी प्रकार कला कौशल संबंधी कालेजों से शिक्षा पाकर डाइरेक्टर, इंजिनियर, रशायन-शास्त्रवेत्ता आदि औद्योगिक जगत में इधर उधर तैयार दिखाई पड़ने लगे। नवीन शास्त्रीय शोधों के अस्त्र शस्त्रों से ये लोग सुसज्जित थे, और किस अस्त्र का कहाँ प्रयोग करना चाहिए यह अमोघ मंत्र उनके गुरु ने उनके कान में फूँक दिया था। सैनिक भाषा छोड़ कर साधारण भाषा में कला कौशल की शिक्षा देनेवाले कालेजों ने नवीन उद्योग युग का आरंभ करके देश का बहुत कुछ हितसाधन किया। इन कालेजों के काम में आरंभिक पाठशालाओं से पूरी पूरी मदद मिली। नए उद्योग धंधों के कारखानों में काम करने योग्य जितने आदमियों की आवश्यकता होती, उतने इन पाठशालाओं से आसानी के साथ मिल जाते थे। इन पाठशालाओं में केवल प्रारंभिक शिक्षा ही उदार मत के शिक्षकों द्वारा दी जाती थी, इस कारण विद्यार्थियों में बुद्धि का विकास और कुशाग्रता अधिक आ जाती थी। प्रारंभिक शिक्षा देनेवाली पाठशा-

शालाओं की आगे की सीढ़ी कंटिन्युयेशन (Continuation) पाठशालाएँ थीं। इन पाठशालाओं का दूसरा नाम "प्रोफेशनल" अर्थात् औद्योगिक पाठशाला भी है। इन पाठशालाओं में सब प्रकार की औद्योगिक शिक्षा दी जाती है। वहाँ पर विद्यार्थियों के हाथ से कारखानों के उपयोगी सब काम कराए जाते हैं। इसी कारण इन पाठशालाओं से सीखे हुए विद्यार्थी किसी कारखाने में जाकर ऊँचे से ऊँचे दर्जे का काम अपने हाथ में लेकर और उसे सफलतापूर्वक कर के बता सकते हैं।

जर्मनी ने अपने यहाँ शिल्प कला की शिक्षा का प्रबंध कर के बहुत ही अधिक लाभ उठाया और इसकी सहायता से बहुत शीघ्रता के साथ जर्मनी की उन्नति हुई और इस उन्नति को अब स्थिरता प्राप्त हो रही है। भविष्यत् में जो औद्योगिक युद्ध संसार में होनेवाला है और जिसकी तैयारियाँ जर्मनी में बराबर हो रही हैं, उसके लिये अन्य राष्ट्र देखते हुए भी हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हैं, यह बात ध्यान रखने योग्य है। जर्मनी की जिन बड़ी बड़ी औद्योगिक पाठशालाओं का नाम अधिक प्रसिद्ध है उनमें से कुछ तो पचास साठ वर्ष पहले की हैं और कुछ की स्थापना हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गए हैं। वर्तमान काल में इन पाठशालाओं की संख्या खूब बढ़ी है। बड़े बड़े शहरों में उनका होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है परंतु बिलकुल छोटे छोटे गाँवों में भी वे पाई जाती हैं और वहाँ उद्योग-धंधों और औद्योगिक कला कौशल की शिक्षा प्रायः घर घर दी जाती है। शिक्षा के लिये होनेवाले

खर्च की अपेक्षा लाभ कुछ कम नहीं होता है। इंग्लैंड की लोकोपयोगी संस्थाओं में से कुछ संस्थाओं का खर्च बहुत ही अधिक है। इंग्लैंड में यह एक नियम सा हो गया है कि बड़े बड़े कामों का स्वरूप भी बड़ा होना चाहिए, परंतु इसका परिणाम यह होता है कि आरंभ में ही अधिक खर्च हो जाने से उस काम के बिगड़ने में कुछ देरी नहीं लगती। यदि उस काम में यश भी प्राप्त हुआ तो समय भी बहुत लगता है। जर्मनी में औद्योगिक शिक्षा के लिये अनेक पाठशालाएँ और कालेज मौजूद हैं। परंतु खर्च अधिक न होने पावे और न उसकी उपयुक्तता नष्ट हो जाय, इस विषय की बड़ी खबरदारी रक्खी जाती है। इन संस्थाओं में केवल लखाव दिखाव के आदमियों को आश्रय नहीं मिलता। शिक्षक लोग पहले दर्जे के व्यवहार-कुशल होते हैं। उच्च कोटि के प्रोफेसरों को जो वेतन वहाँ मिलता है उसे जान कर इंग्लैंड में उसी प्रकार का काम करनेवाले अध्यापक मुँह सिकोड़ते हैं। प्रायः सारे जर्मन प्रोफेसर उतने ही वेतन में संतुष्ट रहते हैं और वेतन देनेवाले अधिकारी भी यह नहीं समझते कि इतना वेतन दे कर हम इन विद्वानों को भूखों मार रहे हैं अथवा इनका अपमान कर रहे हैं। इमारत कारखानों में काम करनेवाले मुख्याधिकारी को जर्मनी में दो सौ दस पौंड से ले कर तीन सौ दस पौंड तक वेतन मिलता है। इसी प्रकार युनिवर्सिटी से शिक्षा पाए हुए इंजिनियरों को १७५ पौंड से २६० पौंड तक सालाना वेतन मिलता है। यह वेतन और इस वेतन के अनुसार काम को देख कर

अंगरेज लोग बिलकुल लाल हो जाते हैं, और यदि कोई यह प्रयत्न करे कि जर्मनी में जिस काम के लिये जितना वेतन दिया जाता है, उस काम के लिये उतना ही वेतन इंग्लैंड में भी दिया जाय तो उस औद्योगिक कार्य से संबंध रखनेवाले समाचार पत्र उस पर कुवाच्यों की वर्षा करने लगते हैं और समय पड़ने पर कुछ सभासद कामंस-सभा में सरकार से प्रश्न करने से भी कभी नहीं डरते। जर्मनी के किसी प्रांत में भी अध्यापकों का वेतन अधिक नहीं है। परंतु युनिवर्सिटी से बाहर निकलते ही उन्हें जहाँ चाहे वहाँ काम मिल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि आदमियों की जितनी माँग होती है उसी के अनुसार लोग बराबर मिलते जाते हैं। ऐसी स्थिति होने के कारण औद्योगिक पाठशालाओं के लिये उच्च कोटि के शिक्षक योग्य वेतन पर जितने चाहिएँ उतने समय पर मिल जाया करते हैं। इस पर से अंगरेज़ प्रोफेसरों को मिलनेवाला वेतन, उनकी योग्यता से अधिक होता है, यह बात नहीं है। परंतु बात यह है कि जर्मनी में औद्योगिक शिक्षा की संस्थाओं को इससे विशेष और महत्व का लाभ प्राप्त होता है। इस कारण ऐसी संस्थाएँ स्थापित करना और उनके लिये खर्च करना, उस देश के लिये बहुत सहज काम हो गया है।

औद्योगिक शिक्षा की बड़ी बड़ी संस्थाओं द्वारा होनेवाले काम को क्षण भर के लिये एक ओर रख कर बिल्कुल साधारण और कम खर्च से चलनवाली तथा महत्वपूर्ण काम करने-वाली संस्थाओं की जर्मनी में कमी नहीं है। जाड़े के दिनों

में, संध्या के समय छोटी सी पाठशाला में, तेल के प्रकाश में, पढ़नेवाले गाँव के लड़कों को शिक्षा देने, चलती फिरती प्रदर्शनियां और प्रांत प्रांत में लोगों के मन में महत्वाकांक्षा उद्दीप्त करने योग्य हाथ की बनी हुई वस्तुओं के नमूने दिखाने, पहाड़ी प्रदेश के लोगों के घरों पर ही साल में छः महीने रह कर उन्हें औद्योगिक शिक्षा देने, आदि कामों को गांव गांव और घर घर, घूम कर, जो औद्योगिक शिक्षा का मूल तत्व उत्कृष्ट रीति से बताते फिरते हैं, उन शिक्षकों का काम कितने महत्व का है, यह बात विचार करने योग्य है। जर्मनी में औद्योगिक शिक्षा को जो स्वरूप प्राप्त हुआ है उसमें विशेष ध्यान रखने योग्य बात शिक्षा की व्यापकता है। इस व्यापकता से किसी प्रकार का व्यवसाय, वह कितना ही छोटा क्यों न हो, बाहर नहीं रह सकता। शिक्षा पाए बिना, व्यवसाय करने की अपेक्षा, शिक्षा प्राप्त करके व्यवसाय करना, अधिक हितकारी है, यह बात जान लेने पर शिक्षाप्राप्ति की कठिनाइयां बिलकुल मालूम नहीं पड़तीं। क्योंकि सब प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा देने की पाठशालाएँ वहां मौजूद हैं। जर्मन शिक्षा की यह व्यापकता प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

औद्योगिक शिक्षा महत्व की है और आवश्यक है, जर्मनी का यह राष्ट्रीय विश्वास कितना दृढ़ है यदि इसका कोई उदाहरण देखना चाहे तो किसी बड़े प्रांत की किसी संस्था में जाकर देख सकता है। क्योंकि प्रत्येक प्रांत में इस विषय में कुछ न कुछ विशेष गुण दिखाई पड़ेंगे। प्रशिया की औद्योगिक पाठशालाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

चार्लोटिनबर्ग का रायल टेक्निकल कालेज, (जहां सैकड़ों शिक्षक काम करते हैं) और क्रेफेल्ड की बुनाई की पाठशाला देखने योग्य हैं। परंतु सेकसन, बवेरिया, बुर्टेबर्ग और बेडन की पाठशालाएँ ऊपर बताई हुई पाठशालाओं से भी उच्च कोटि की हैं। सेकसन की पाठशाला उस प्रांत के निवासियों और पाठशाला से काम सीख कर जानेवाले लोगों की सहायता से ही चल रही है। स्वावलंबन की दृष्टि से भी यह बात बड़े महत्व की है। अतएव इसका उल्लेख हम यहां पर जरा विस्तारपूर्वक करना चाहते हैं।

सेकसन में, औद्योगिक शिक्षा ही लोगों की जीवन-मूरि बन रही है। इतना ऐक्यभाव जर्मनी में अभी अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता। परंतु इसके लिये आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। क्योंकि इस प्रांत के फ्रेबर्ग में सब से पुरानी औद्योगिक पाठशाला सन् १७६६ में खोली गई थी। इसके तीन वर्ष बाद ही सेकसन लोगों ने अनिवार्य शिक्षा के तत्व को स्वीकार कर लिया था। परंतु इस तत्वानुसार शिक्षा का कार्य होने में बहुत समय लग गया और सन् १८०५ से नियमानुसार काम हुआ। इसी प्रकार चेमनिट्स (Chemnitz) शहर में १७९६ में एक औद्योगिक पाठशाला खोली गई। और उन्नीसवीं सदी का आरंभ होने पर, शीघ्र ही कुछ वर्षों में और भी तीन पाठशालाएँ खोली गई। कहने का तात्पर्य यह है कि सेकसन में औद्योगिक शिक्षा का अच्छा प्रचार प्राचीन समय से ही है।

सेकसन प्रांत में चार प्रकार की पाठशालाएँ हैं। प्राथ

मिक (पूर्वभाग) अर्थात् प्राइमरी, प्राथमिक (उत्तर भाग) अर्थात् "कंटिन्युएशन", मध्यम अर्थात् "मिडिल" और श्रेष्ठ अर्थात् "हायर"। परंतु वहां की पाठशालाओं की शिक्षा कितनी ही उच्च हो, तो भी प्राथमिक शिक्षा की उत्तमता से ही उच्च शिक्षा का कार्य सुचारु रूप से संपादित होता है। अन्य पाठशालाओं को एक ओर रख कर केवल औद्योगिक पाठशालाएँ ही वहां ३६० के करीब पाई जाती हैं और उन पाठशालाओं में भिन्न भिन्न व्यवसायों की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। सन् १९०५ में इस प्रांत की जन-संख्या ४५ लाख थी। अर्थात् तेरह हजार मनुष्यों के लिये एक औद्योगिक पाठशाला थी। जर्मन साम्राज्य की आबादी का $\frac{1}{14}$ हिस्सा सेकसन की आबादी थी। यह बात सन् १८७१ की है। परंतु सन् १८७१ से १९०५ में वहां जनसंख्या ७६·४ सैकड़ा के हिसाब से बढ़ गई। परंतु जहां सेकसन की आबादी में इतनी अधिक वृद्धि हुई वहां प्रशिया में केवल ५१·१, बवेरिया में ३४·२, वुर्टेंबर्ग में २६·६ और बेडन में ३७·६ सैकड़ा बढ़ी। इससे यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि प्रशिया आदि अन्य प्रांतों पर सेकसन ने चढ़ाई करके कैसी अच्छी विजय प्राप्त की है।

सेकसन में औद्योगिक पाठशालाओं का जो आश्चर्यजनक जाल फैला हुआ है वह किसी ने अत्याचारपूर्वक नहीं फैलाया है और न सरकार की सख्ती के कृत्रिम उपायों से ही उसका प्रसार हुआ है, यह बात खास तौर पर ध्यान रखने योग्य है। औद्योगिक शिक्षा के संबंध में लोगों का उत्साह और

उसे प्राप्त करने की सहज स्फूर्ति, इन दो बातों ने ही उन्हें इस कार्य में सफलता प्रदान की है। लोगों ने अपनी स्वतः की प्रेरणा से, अन्य किसी पर भरोसा न करके, और अपने पास का धन लगा कर औद्योगिक शिक्षा की इतनी उन्नति की, यह बात कुछ कम आश्चर्य की नहीं है। अन्य प्रांतों की सरकारों का इस ओर विचार जाने के पहले ही इस प्रांत में लोगों के उद्योग से अनेक औद्योगिक पाठशालाएँ स्थापित होकर लोग उच्च कोटि का काम करने लगे थे। अब सेक्सन सरकार भी इस ओर ध्यान देने लगी है। परंतु इन संस्थाओं की अंतर्व्यवस्था में वह हाथ डालना नहीं चाहती। लोगों को अपने आप ही उनकी देख भाल करनी चाहिए; शिक्षा पद्धति में लोगों को जो आवश्यक फेर फार करना हो, उन्हें सर्वसाधारण स्वतः करें, इस नीति पर वहां की सरकार चल रही है। जो काम आरंभ में सर्वसाधारण लोगों के हाथ से नहीं होते, उन कामों का आरंभ सरकार अपने हाथों से कर देती है। ऐसे कामों का आरंभ करने में सरकार द्रव्य अथवा अन्य और किसी प्रकार की सहायता करने में, कमी नहीं करती। व्यक्ति विशेष व्यापारी अथवा व्यापारी लोगों की सभा के खर्चे से, अन्य छोटे दर्जे की पाठशालाओं के मुकाबले में, उच्च कोटि की औद्योगिक पाठशालाओं का चलाना जरा कठिन काम है। अतएव उन पाठशालाओं को सरकार अपने खर्च से चलाती है। इसी प्रकार गाँवों में घर घर कलाकौशल की शिक्षा देने का काम सरकार ने बड़ी चतुराई के साथ आरंभ किया है। क्योंकि सरकार के ध्यान

में यह बात आ गई है कि बिना सरकार के आगे हुए लोगों के हाथ से धनाभाव के कारण कुछ हो नहीं सकेगा। सर्व साधारण लोगों ने जो पाठशालाएँ खोल रक्खी हैं उन्हें भी सरकार से हर साल सहायता मिलती रहती है। परंतु इस सरकारी सहायता को पाकर भी, स्वावलंबन का मार्ग पाठ-शालाओं के व्यवस्थापक परित्याग नहीं करते। कृषि शालाओं को सरकार से पूरी पूरी सहायता दी जाती है; उसके बाद औद्योगिक शालाओं को सहायता मिलती है। और सब से कम सहायता व्यापारी शालाओं को प्रदान की जाती है। सहायता में ऐसा अंतर क्यों है, इसका कारण स्पष्ट है। व्यापारी शालाएँ बहुधा शहरों में होती हैं और उनकी धन से मदद करने के लिये व्यापारी और कारखाने-वाले सदा तैयार रहते हैं क्योंकि वे जानते हैं और उन्हें इस बात का पूरा अनुभव होता है कि शिक्षा के लिये जो धन खर्च किया जाता है वह ब्याज सहित वापिस आ जाता है। "ट्रेड गिल्ड" नामक जो व्यापारी संस्थाएँ हैं वे भी इसी विचार से औद्योगिक पाठशालाओं को सहायता पहुँचाने के लिये निष्ठापूर्वक तैयार रहती हैं। अब तक इस कार्य में लोगों ने जो साहस दिखलाया है वह प्रशंसनीय है। परंतु इस से भी अधिक साहस भविष्यत् में ये लोग दिखावें इसी उद्देश्य से सरकार औद्योगिक शिक्षा से अपना हाथ खींचती जाती है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि सरकार इस ओर से उदासीन रहना चाहती है वरन् वह यह चाहती है कि वाणिज्य व्यवसाय करनेवाले लोग अपनी आवश्यकता-

नुसार अपने सहारे आप खड़े हों; क्योंकि ऐसा होना सार्वजनिक दृष्टि से हितकर है। इसी कारण सरकार ने अपनी नीति को बदलना आरंभ कर दिया है। संभव है कि सरकार की इस नवीन नीति को यश प्राप्त न हो, परंतु सेकसन प्रांत में तो कई स्थानों पर उसे बहुत ही उत्तमतापूर्वक यश प्राप्त हुआ है और इसी कारण उसने औद्योगिक शिक्षा में सब प्रांतों को नीचा दिखा दिया है।

सेकसन प्रांत में पांच प्रकार की औद्योगिक पाठशालाएँ हैं। स्थानाभाव से इन सब का वणन यहां पर देना कठिन है। परंतु इतना हम अवश्य कहेंगे कि इन पाठशालाओं में से किसी पाठशाला में पढ़ने के लिये जाने को विद्यार्थियों पर कुछ कड़ाई नहीं होती। कड़ाई नहीं होती, यह तो एक कहने की बात है। वास्तविक तौर पर देखा जाय तो उसे कड़ाई ही कहेंगे वहां पर यह एक नियम है कि चाहे बालक हो अथवा बालिका, प्रारंभिक शिक्षा पाकर मदरसे से निकलते ही उसे तीन वर्ष तक "कंटिन्युएशन" पाठशाला में शिक्षा पाने के लिये जाना ही चाहिए। इस प्रकार की अनिवार्य शिक्षा का कानून साफ साफ तौर पर सन् १८९३ से व्यवहार में लाया जाने लगा है। अन्य प्रकार की शिक्षा के लिये और कोई स्पष्ट कानून नहीं है, बस इतना ही अंतर है। इस प्रकार सख्ती के साथ शिक्षा देने के तत्व को सब से पहले प्राशिया ने स्वीकार किया, पश्चात् सेकसन में इसका प्रभाव जमा; ऐसा कहने में कुछ हर्ज नहीं है। इस तत्व को स्वीकार करने के पश्चात् ही शिक्षा के काम में नवीन युग का आरंभ हुआ।

सेकसन में वर्तमान शिक्षाप्रणाली का स्वरूप प्राप्त होने में वहुत कुछ बुद्धिमत्ता, वहुत समय और धन खर्च करना पड़ा। उन्हें पूर्ण यश प्राप्त हुआ देख कुछ लोगों के मन में उनके लिये पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो गई। परंतु कुछ लोग वैमनस्य मानने लगे हैं। इस काम में इन लोगों ने वहुत सी सरकारी मदद न ले कर स्वावलंबन के तत्व पर ही काम किया। यही उनके यश का मुख्य कारण है। और इसी प्रकार विद्यार्थियों ने भी केवल पुस्तकी ज्ञान न प्राप्त कर के व्यवहार में जिस ज्ञान का उपयोग हो सके, ऐसी शिक्षा प्राप्त करने में अधिक परिश्रम किया। यही कारण है कि वहां के लोग शिक्षा को अधिक उपयोगी बना कर अपने काम में ला सके। व्यावहारिक शिक्षा का एक उदाहरण हम यहां पर देते हैं। भिन्न भिन्न पाठशालाओं के विद्यार्थियों के बनाए हुए सामान की प्रदर्शिनी नियमित समय तक करने की व्यवस्था वहां की गई है। इस प्रदर्शिनी में विद्यार्थी और उनके शिक्षकों के अलावा और लोगों का प्रवेश नहीं होता। हर एक पाठ-शाला से विद्यार्थी अपने हाथों से सामान तैयार करके भेजते हैं, वह सामान चाहे अच्छा हो या बुरा। इस व्यवस्था से पाठशालाओं को उत्तेजना मिलती है। इन प्रदर्शिनियों में लखाव दिखाव और सजावट नहीं होती। क्योंकि लखाव दिखाव और सजावट से लोगों को प्रसन्न करना ही इन प्रदर्शिनियों का उद्देश्य नहीं है। इनका उद्देश्य तो यह है कि कुछ काम हो।

अब अंत में एक और महत्व की बात कह कर हम इस

अध्याय को समाप्त करते हैं। उच्च कोटि की पाठशालाओं में जाने की किसी को रोक नहीं है, परंतु व्यवहार निपुण होने के कारण विदेशी विद्यार्थियों की बाबत कुछ तिरस्कार नहीं तो अप्रसन्नता वर्तमान समय में दिखाई पड़ने लगी है। इस विषय में एक प्रोफेसर ने लिखा है—"पहले हम लोगों से यह कहते थे कि हर एक आदमी को हमारे यहां आने का अधिकार है, हमारे यहां आने में किसी को कुछ हानि नहीं है, अपार पृथ्वी पड़ी हुई है, और हमारे पास भी काफी स्थान है; परंतु अब हम ऐसा नहीं कहते।" इसका मतलब यह है कि हर एक विदेशी विद्यार्थी कुछ समय बाद हमारे साथ प्रतिद्वंद्विता करने लगेगा, यह शंका शिक्षकों में उत्पन्न हो गई है। इसी कारण "आउट लेंडर" अर्थात् विदेशी लोगों के संबंध में इस प्रकार की उदासीनता पैदा हो रही है। ज्ञान की दावत में विदेशी लोग घर के आदमियों के साथ साथ एक चौके में कंधा से कंधा भिड़ा कर पहले बैठते थे परंतु अब उनको दूसरे चौके में बिठाने का प्रयत्न किया जा रहा है; इतना ही नहीं, अब तो भोजन के दाम भी दुगने चौगुने मांगे जा रहे हैं। परंतु इतनी रोक टोक होने पर भी विदेशी व्यापारी वहां बिना जाए नहीं रहते। क्योंकि इस उपाय से भी विदेशी विद्यार्थियों की संख्या कम नहीं हुई है।

सातवाँ अध्याय।

कारखानेवाले और मज़दूर लोग।

जर्मनी के कारखानेवाले मजदूरों की निंदा करते हैं, और मजदूर कारखानेवालों को। परंतु इन दोनों से दूर रह कर यदि कोई वस्तुस्थिति का निरीक्षण करे तो उसे ये उतने बुरे नहीं दिखाई पड़ते, जितना वे आपस में अपने आप को बुरा समझते हैं। हां, यह बात ठीक है कि दोनों में खूब चलती है और किसी किसी व्यवसाय में तो इसकी हद हो गई है। जिस प्रकार मजदूरों ने अपने संघ बनाए हैं उसी प्रकार उनके जवाब में कारखानेवालों ने अपने संघ कायम किए हैं। परंतु कारखानेवालों के संघ अधिक जोरदार हैं। किसी किसी कारखाने में तो इन संघ शक्तियों के कारण मजदूरों का कुछ बस नहीं चलता।

कारखानों के मालिकों से अपने लिये अधिक अधिकार अथवा मजदूरी पाने में आसानियां पैदा हों, इस उद्देश से वहां जो सभाएँ बनाई गई हैं, उनको "ट्रेड्स यूनियन" कहते हैं। जर्मनी में इस प्रकार की एक नहीं अनेक सभाएँ हैं। इन सभाओं की संघशक्ति पर मजदूरों के हित अथवा अहित का बहुत कुछ दारोमदार है। मजदूरों और उनकी सभाओं से संबंध रखनेवाला एक कानून है। इस कानून का नाम "इंडस्ट्रियल कोड" है। इस कानून में १५२ धाराएँ

हैं इन धाराओं में मजदूरों की सांपत्तिक स्थिति सुधारने और अपनी उन्नति के लिये समुदाय बनाने अथवा भाषण करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। परंतु जिस प्रकार मजदूरों के लिये स्वाधीनता प्रदान की गई है, उसी प्रकार कारखानेवालों को भी कानून बना कर उनके कार्य के लिये स्वाधीनता दी गई है। अर्थात् मजदूरों के उपद्रव रोकने के लिये कारखानेवालों को अपने कारखाने का दरवाजा बंद कर देने का अधिकार है। इसी को अंगरेजी में "लॉक-आउट" कहते हैं। इसी प्रकार मजदूरों को अपनी सांपत्तिक स्थिति के संबंध में हड़ताल करने और कारखानेवालों को उनका मन मुटाव दूर करने का अधिकार कानून के द्वारा प्रदान किया गया है। परंतु कानून में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि इस अधिकार को राजनैतिक अथवा सार्वजनिक कामों में लाने का उभय पक्ष को हक प्राप्त नहीं है।

हड़ताल कर के अपना कल्याण साधन करने का अधिकार मजदूरों को कानून के अनुसार दिया गया है परंतु वास्तव में जैसा लाभ मजदूरों को मिलना चाहिए, नहीं मिलता। बहुधा देखा गया है कि जब मजदूर यह कह कर कि "तुम हमारा कहना नहीं मानते अतएव हम हड़ताल करते हैं अथवा अपने वेतन की वृद्धि के लिये मालिकों से कहते हैं" तो पुलिसवाले उनपर मुकद्दमे चलाते हैं और न्यायाधीश इन मुकद्दमों को सुन कर उन्हें अपराधी समझ दंड देते हैं। कोई कोई न्यायाधीश उन्हें निरपराधी समझ कर छोड़ भी देते हैं परंतु इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम देखने में आते हैं।

इतना होने पर भी यदि साधारण तौर पर देखा जाय तो यह विश्वास होता है कि कानून के शब्द, कानून बनानेवालों ने मजदूरों के कल्याणार्थ उदारतापूर्वक ही रक्खे हैं पर न्यायाधीश उनका अर्थ केवल अनुदारता के साथ लगा कर दंड देते हैं। इसीलिये कारखानेवालों और मजदूरों के बीच उपस्थित होनेवाले वादविवाद में न्याय का पासा कारखानेवालों की ओर ही अधिक झुकता है और सदा नहीं तो, अधिकांश तौर पर यश का पलड़ा उन्हीं की ओर झुका हुआ रहता है।

मजदूरों की मुख्य तीन प्रकार की सभाएँ हैं। (१) " फ्री " अर्थात् " सोशियल डेमोक्रेट, " (२) हर्श-डेंकर अर्थात् " रेडिकल " और (३) "क्रिश्चियन अथवा रोमन केथोलिक।" इन सबों में पहले प्रकार की "यूनियन" सब से अधिक प्रभावशाली हैं और अगुओं का मान भी उनको प्राप्त है। १८९० में इन यूनियनों के सभासदों की संख्या पौने तीन लाख थी। परंतु सन् १९०६ से यह संख्या बढ़ कर प्रायः सत्रह लाख हो गई है। अब कुछ समय से पुरुषों की देखादेखी स्त्रियों ने भी इसी प्रकार की अपनी सभाएँ बनाई हैं। सन् १९०६ में स्त्रियों द्वारा स्थापित संस्थाओं की संख्या ३७ थी, और उनमें सवा लाख स्त्रियाँ सभासद थीं। फ्री यूनियनों की आमदनी भी बहुत अधिक है। परंतु खर्च भी उनका कुछ कम नहीं है। " सोशियालिज्म " नाम की जो राजनैतिक संस्थाएँ जर्मनी अथवा यूरोप के अन्य देशों में स्थापित हुई हैं, उनकी इन लोगों से पूर्ण सहानुभूति

है, और इसी कारण बहुत से मजदूर पक्ष के लोग सोशि-यालिस्ट बन गए हैं। यूनियन के सभासद बड़े परिश्रमी कर्त्तव्यरत, युक्तिपूर्वक कार्य करनेवाले और अपने हिताहित पर पूर्ण दृष्टि रखनेवाले होते हैं। अन्य सभा समाजों की अपेक्षा इनको धन अथवा अन्य प्रकार के साधन अच्छे होने से जितना उद्योग ये कर सकती हैं, उतना और सभाएँ नहीं कर सकतीं। मुख्य संस्था के आश्रय में मजदूरों ने "सेक्रे-टरियट" अर्थात् "सलाह देनेवाली मंडलियाँ" स्थापित की हैं जिनसे मजदूरों को बहुत लाभ पहुँचता है।

दूसरे प्रकार की संस्था "हर्श-डेंकर अथवा रेडिकल" है। इस संस्था के उत्पादक का नाम डाक्टर मेक्सहर्श था। पार्लियामेंट में रेडिकल नाम का जो एक राजनैतिक दल है, उसी दल के अनुयायी डाक्टर साहब थे। आरंभ में इस संस्था का उद्देश्य राजनैतिक और सामाजिक दोनों प्रकार का था और मजदूरों में रेडिकल दल के जो लोग थे वे इस संस्था के सभासद होते थे। परंतु वर्तमान समय में इस संस्था का राजनैतिक स्वरूप प्रायः नष्ट हो गया है और केवल सांपत्तिक विषय के अलावा और किसी राजनैतिक विषय पर विचार करना इसने त्याग दिया है। मजदूरों में से चुने हुए लोग इस संस्था के सभासद होते हैं। परंतु उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है और न उनके पास अधिक धन ही है। कारखानेवालों के साथ लड़ने झगड़ने का प्रसंग आने पर जहाँ तक बनता है तहाँ तक ये उसे टाल ही देना चाहते हैं। परंतु जो बात कारखानेवाले कहते हैं उसे चुपचाप मान

लेने को भी ये तैयार नहीं रहते। "दंड" की अपेक्षा "साम" से ही काम निकालना ये विशेष उपयोगी समझते हैं। यदि साम द्वारा देर में काम हो तो उससे वे उकताते नहीं।

तीसरा दल क्रिश्चियन अथवा रोमन केथलिक लोगों का है। इस दल की संस्थाएं खास करके ह्रीनिश-वेस्टफालिया प्रांत में हैं। इस प्रांत के लोगों का धर्म ही रोमन केथोलिक है। धर्म पर लोगों का अधिक विश्वास होने से इस दल के सभासद झगड़ा बखेड़ा करने के बिलकुल विरुद्ध हैं। सर्व-साधारण लोगों के साथ सहानुभूति रखनेवाले धर्मोपदेशकों ने ही इस दल की बुनियाद डाली और उन्हीं लोगों का इस दलवालों को बहुत आश्रय मिला है। आरंभ में इसका स्वरूप केवल धार्मिक था। अपने धर्मानुयायी लोग दूसरे धर्म की यूनियन के पास न जायँ, बस इसी बात की ओर ध्यान रखा जाता था। पर आगे चल कर, समय के फेर से, देश की स्थिति बदलने पर ट्रेड यूनियन की पद्धति पर मजदूरों के हितसाधनार्थ भी यह संस्था काम करने लगी। इतना होने पर भी इस संस्था ने धार्मिक वृत्ति को तिलांजलि नहीं दी। मजदूरों के सारे दलों में यदि किसी दल के मज-दूर अधिक गरीब हैं तो इसी दल के। इसी कारण समय पड़ने पर इस दल के लोग सोशियालिस्ट लोगों के साथ अथवा अन्य किसी दलवालों के साथ मिल कर एक दिल होकर काम करते हैं। परंतु काम निकल जाने पर वे पुनः उन लोगों से अलग हो कर अपना काम करने लगते हैं। सन् १९०५ में कोयले की खानों के मजदूरों ने एक बहुत बड़ी

हड़ताल की। इस हड़ताल के समय इस दल के लोग सोशि-यालिस्ट दल से जा मिले थे। दोनों ने मिल कर अपने इच्छानुसार अपना कार्य साधन किया; पुनः शीघ्र ही ये अलग हो गए। सोशियालिस्ट दल के लोगों का मत इन लोगों से बिलकुल भिन्न है। इन लोगों का विचार है कि इस मत का प्रचार होने से अमीरों और गरीबों में तुमुल युद्ध होगा और इस युद्ध से समाज की दशा बिगड़ जायगी। इसी कारण इनका मत सोशियालिस्ट मत से नहीं मिलता। इस दल की संस्था की आर्थिक स्थिति बहुत कुछ संतोषजनक है। सोशियालिस्ट लोगों के समान ही, इस दल की संस्थाओं ने भी अपनी शाखाएँ जगह जगह खोली हैं। धर्मोपदेशकों की इस दल में प्रधानता होने से यह संस्था किसी काम में उग्र नीति का अवलंबन नहीं करती।

इन तीन प्रकार की संस्थाओं के अलावा और भी अनेक छोटी मोटी संस्थाएं हैं। परंतु उनका कोई अधिक महत्व नहीं हैं। मजदूर लोगों को संघशक्ति का महत्व मालूम हो गया और आपस में एकता बढ़ने से भिन्न भिन्न व्यवसायों में हर साल हड़तालें होने लगीं। सन् १९०६ में कुल ३३२८ हड़तालें हुई और उनका प्रभाव १६२४६ कारखानों पर पड़ा। इन हड़तालों में २७२२१८ मजदूर सम्मिलित हुए थे और २४४३३ लोग काम न होने से खाली बैठे रहे। इस एक उदाहरण से ही, यह जाना जा सकता है कि जर्मनी के व्यापार व्यवसाय को हड़ताल रूपी रोग किस तरह घेरे हुए है।

गत पच्चीस वर्षों में मजदूरों को अधिक वेतन मिलने लगा है और उनके स्वास्थ्य की भी उन्नति हुई है। इन सब सुधारों का श्रेय ट्रेड यूनियनों को ही मिलना चाहिए। मजदूरों को कम घंटे काम करके अधिक वेतन मिलने से उनका बहुत कुछ हितसाधन हुआ है। परंतु कारखानेवालों पर खर्च का अधिक बोझ पड़ गया है और इस बोझ से दब जाने के कारण उनकी क्या दशा होगी, इस पर विचार होने लगा है। किंतु जर्मन माल की विदेश में अधिक खपत होने के कारण कारखाने-वालों के दिवाले निकलने की अधिक चिंता नहीं है, यह शुभ लक्षण है। मजदूर लोगों की मांग पूरी करने को मालिक कभी तैयार न थे परंतु वहां के मजदूर मालिकों से दब कर चुप रहनेवाले नहीं हैं। वे दृढ़तापूर्वक अपना कार्य संपादन करते रहते हैं और अंत में सफलता प्राप्त करते हैं। यह बात उनके लिये एक प्रकार से भूषणावह है।

लोगों का विचार है कि जर्मनी की ट्रेड यूनियनों की यह वृद्धि वाजवी की अपेक्षा बहुत अधिक है। और इसी कारण कभी कभी तो लोग यह भविष्य कहने लगते हैं कि मालिक और मजदूरों के बीच का वाद विवाद मिटते ही इन यूनियनों का महत्व मजदूरों को ही कम मालूम होने लगेगा। परंतु हमारे मत से यह बात केवल भ्रम मात्र है। उभय पक्ष के वाद विवाद कभी मिटेंगे यह आशा करना भूल है। हम में कितनी शक्ति है, यह बात यूनियन अच्छी तरह जान गई हैं अतएव कुछ लोगों का यह मत है कि वाद विवाद का अंत होने के बजाय अभी तो यही कहना चाहिए कि उसका तो

आरंभ ही हुआ है। और यह बात अनुभव से भी ठीक जान पड़ती है। जब कभी कोई बहुत बड़ा वाद विवाद उपस्थित हो जाता है तब और भी बहुत से लोग यूनियनों में आकर शामिल हो जाते हैं परंतु उस वाद विवाद का समाधानकारक निर्णय हो जाने के पश्चात् खोगीर की भर्ती के लोग अपना अंग निकाल लेते हैं। इस प्रकार के कई उदाहरण अभी हाल में ही देखे गए हैं और इसी कारण कुछ यूनियनों के सभासदों की संख्या भी कम हो गई है। परंतु इस प्रकार के उदाहरणों से यह परिणाम निकलना कि मजदूरों और मालिकों के बीच का विवाद नष्ट हो कर यूनियनें ही नष्ट हो जांयगी, भूल है। वर्तमान समय में जो दशा हम अपनी आँखों से देखते हैं, वह ऐसी है कि ट्रेड यूनियनों की संख्या धीरे धीरे परंतु दृढ़ता के साथ बढ़ रही है और यह बाढ़ और भी कुछ दिनों तक ऐसी ही रहेगी, यही अनुमान है। हर विषय में मजदूरों की स्थिति कैसे सुधरी, इस बात को ध्यान में रख कर, यह अनुमान ठीक नहीं है, ऐसा प्रमाणित नहीं होता। अपना हित साधन करने के लिये कारखानेवालों द्वारा स्थापित "सिंडिकेट" अथवा यूनियन और दोनों की संयुक्त सभाएँ और इन सभाओं का विस्तीर्ण कार्यक्षेत्र और द्रव्य की अनुकूलता, अधिक कर लग जाने से खर्च में किफा-यतशारी और आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करने की इच्छा, इन सब बातों के कारण अपने गोट में अधिक धन होने की ओर मजदूरों की प्रवृति होना एक सहज बात है। परंतु वे लोग यह बात कभी नहीं सोचते कि यदि हम लोग अधिक

मजदूरी माँगने लगेंगे तो उसका बार ग्राहकों पर ही पड़ेगा, उनका ध्यान तो अपने लाभ की ओर है। ट्रेड यूनियनों को और खास कर सोशियालिस्ट दल की ट्रेड यूनियनों को अपना आंदोलन नियमानुसार चलाने के लिये प्रभावशाली समाचार पत्रों की बहुत बड़ी सहायता है। सोशियालिस्ट दल के ६८ नगरों से दैनिक पत्र निकलते हैं। इनमें से तीन शहरों मे तो दो दो तीन तीन दैनिक पत्र प्रकाशित होते हैं। चार पत्र साप्ताहिक हैं और १८ पत्र समय समय पर निकलते रहते हैं। इनके अलावा भिन्न भिन्न व्यापार व्यवसाय का हाल प्रकाशित करनेवाले ट्रेड यूनियनों के और अनेक पत्र हैं। इन पत्रों में से बहुत से पत्र साप्ताहिक हैं। १२ मासिक पत्र भी इनकी ओर से प्रकाशित होते हैं। इन पत्रों का संपादन सोशियालिस्ट अथवा ट्रेड यूनियनों का कोई सभासद करता है। पोलेंड और इटली के जो मजदूर हैं उनके लिये उपयोगी समाचार पत्र उन्हीं की भाषा में प्रकाशित होते हैं। दैनिक पत्रों की खपत भी बहुत है। धातु के करखानों संबंधी यूनियनों द्वारा संचालित पत्र के दो लाख ग्राहक हैं। बहुत से दैनिक पत्र बड़ी कुशलता के साथ ज़ोरदार भाषा में निकलते हैं। ये पत्र वाद विवाद के विषयों में गुप्त स्वरूप न रख कर स्पष्ट रूप से धर्म संस्थाओं के विरुद्ध और कभी कभी तो नास्तिक मत का समर्थन करने तक पहुँच जाते हैं। सोशियालिस्ट लोगों का कथन है कि "हम धर्म के विरुद्ध नहीं हैं। धर्म लोगों की निज की संपत्ति है। बस, हमारा यही कहना है। परंतु इस कथन और उनके

पक्ष के समाचारपत्रों के धर्म-विरुद्ध लेखों की संगति कैसे लगाई जा सकती है। हां, इतनी बात अवश्य ठीक है कि इस प्रकार के लेखों से लोगों में खूब उत्साह उत्पन्न होता है। मजदूरों का पक्ष समर्थन करने को ये पत्र सदा तैयार रहते हैं और कारखानेवालों के साथ जब कभी मजदूरों का वाद विवाद आरंभ होता है तब मजदूरों का पक्ष ले कर उनके पक्ष का समर्थन करने में ये पत्र कभी कमी नहीं करते।

इन पत्रों के संपादक सुशिक्षित और विद्वान लोग होते हैं। कई एक संपादकों को तो "डाक्टर" की पदवी भी मिली हुई है। अर्थशास्त्र का अध्ययन अधिक करने के कारण ये लोग सांपत्तिक विषयों पर गवेषणापूर्ण और विचारपूर्वक लेख लिख कर प्रकाशित करते हैं। फिर चाहे वे लेख एक-तरफा या पक्षपात सहित ही क्यों न हों, परंतु उन लेखों में उनकी बहुज्ञता और बुद्धिमत्ता का पता अवश्य लगता है। पत्रों में कभी कभी जो बातें कही जाती हैं उनमें भूलें भी होती हैं परंतु ये भूलें जान बूझ कर की गई हैं, यह नहीं कहा जा सकता। उन्होंने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया उसमें भूलें हो सकती हैं परंतु ये भूलें जान बूझ कर नहीं, उनके अंधप्रेम के कारण होती हैं। अतएव वे क्षम्य हैं।

उच्च कोटि का साहित्य थोड़े दामों में पाठकों को देने के काम में, जर्मनी इंग्लैंड के बहुत पीछे है। परंतु कारीगर लोगों के पक्ष के समाचारपत्रों और मासिक पुस्तकों में प्रकाशित होने-वाले लेख इंग्लैंड के उसी पक्ष के लोगों द्वारा प्रकाशित पत्रों और पुस्तकों की अपेक्षा अधिक सरस और व्यापक होते हैं,

इसमें संदेह नहीं है। किसी खास विषय के कुछ समाचार-पत्रों में तो कला कौशल, साहित्य, पदार्थ विज्ञान, सृष्टिशास्त्र, प्राचीन शोध और अध्यात्मविद्या आदि के लेख इतने अच्छे और विद्वत्ता पूर्ण निकलते हैं कि बड़े बड़े विद्वान् भी उन्हें पढ़ कर लाभ उठाए बिना नहीं रहते। इन लोगों द्वारा प्रकाशित समाचारपत्रों की अच्छी आमदनी होती है। जहां तक बनता है एक दल का मनुष्य दूसरे दलवाले के समाचारपत्र को नहीं खरीदता।

"हर्ष-डंकर" और "क्रिश्चियन" दल की यूनियनों के भी समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं परंतु सोशियालिस्ट दलवालों की अपेक्षा बहुत कम, और इस पक्ष के समाचारपत्रों का महत्व भी उतना नहीं है। क्रिश्चियन यूनियनें तो इस काम में सब से पीछे हैं। इन तीनों दलों के समाचारपत्रों में सदा कुछ न कुछ घुस फुस बातें चलती ही रहती हैं। इस से यह अनुमान कर लेना कुछ अनुचित न होगा कि इनमें भी परस्पर मतभेद और विरोध कुछ न कुछ बना ही रहता है, अर्थात् इनमें, आपस में, भी एकमत नहीं है।

साधारण तौर पर हर एक दलवाले अपने नेताओं की व्यवस्था का उल्लंघन करने को तैयार नहीं होते। जो एक व्यवस्था एक बार व्यवहार में लाई गई कि उसे सब लोग मान्य कर के, उसी के अनुसार व्यवहार करने लग जाते हैं। परंतु आरंभ में यह दशा न थी। पहले उनके यह विचार न थे कि एक बार जो व्यवस्था काम में लाई गई उसे सब लोगों को मानना ही चाहिए। उसके द्वारा मिलनेवाले यश अथवा अपयश का हमें भी हिस्सेदार होना चाहिए। अपने नेता जिस

बात का निर्णय एक बार कर दें, उसी के अनुसार सब को चलना चाहिए। और उस संबंध में उनकी निराशा अथवा उनका अपमान हुआ तो भी उसे स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार के विचारों के न होने से आरंभ में यूनियनों का काम जैसा चलना चाहिए वैसा नहीं चलता था। परंतु धीरे धीरे जब यूनियनों के तत्व लोगों के ध्यान में आ गए, संघशक्ति का महत्व उन्हें मालूम हो गया कि परस्पर की सहायता के बिना कार्य करने में कैसे कैसे अनर्थ उठ खड़े होते हैं, तब उन्होंने अपने मतभेद को भुला कर व्यवस्थित मन से अपना कार्य करना आरंभ कर दिया। राजनैतिक आचार विचार की शिक्षा मिलने से इन लोगों में अधिक प्रगल्भता आ गई है। परंतु राजनैतिक और औद्योगिक विषयों का एकीकरण कर देने से जर्मन मजदूरों को कुछ सांपत्तिक लाभ हुआ अथवा नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है। ऊपर जिस सुधार की चर्चा की है, वह सुधार हो जाने पर भी नेताओं के हाथ से लोगों को निकल जाते हुए कई बार देखा गया है। इस से यह पाया जाता है कि हड़ताल रूपी ज्वर जब एक बार चढ़ता है तब सारासार विचार एक ओर रख कर नेताओं के अधिकार को लोग हवा में उड़ा देते हैं। सन् १९०७ में जब राजा लोगों ने हड़ताल की तब मजदूरों के नेताओं ने कारखाने के मालिकों के साथ जो व्यवस्था की उसे मजदूर लोगों ने स्वीकार नहीं किया। अतएव नेताओं ने भी अपना मुँह इनकी ओर से फेर लिया। इस प्रकार मजदूरों को दोहरी हानि उठानी पड़ी। कारखानेवाले कहने लगे कि मजदूर

लोग जब अपने नेताओं के किए हुए निश्चय के अनु-सार काम नहीं करते तब फिर उनके किसी प्रस्ताव पर विचार करना ही फजूल है ! उनके अनुकूल प्रस्ताव करने पर भी जब मजदूर लोग कहना नहीं मानते तब हमारे पास आ कर उन्हें किसी प्रस्ताव को उपस्थित करना उचित नहीं है। इस प्रकार कारखानेवालों ने मजदूरों और उनके नेताओं के मुँह बंद कर दिए।

ट्रेड यूनियनों का खर्च चलाने के लिये सभासदों को अपनी आमदनी में से ६ सैकड़ा देना पड़ता है। काम चलाने के लिये जो आदमी नियत किए जाते हैं वे बड़े बुद्धिमान् और दिल लगा कर काम करनेवाले होते हैं और उन्हें जो वेतन मिलता है वह उनके परिश्रम के मुकाबले में बहुत कम है अर्थात् एक कुशल कारीगर को जो मजदूरी मिलती है उससे उनका वेतन कुछ अधिक नहीं होता। इतने कम वेतन पर उन्हें सप्ताह में छः दिन और कभी कभी तो इतवार तक सबेरे, दोपहर और शाम को अपनी जगह पर हाजिर रहना पड़ता है। अपना हित साधन करने के लिये दूसरों के साथ झगड़ने में उनका बहुत सा समय नष्ट हो जाता है और उन्हें शारीरिक कष्ट भी उठाना पड़ता है। इतना होने पर भी अदालत का द्वार न देखना पड़े, इसका वे बराबर ध्यान रखते हैं। हम सत्पक्ष के लिये झगड़ते हैं, यदि उनको इस बात का दृढ विश्वास न हो और अपने काम पर प्रेम न हो तो इतना थोड़ा धन पा कर कोई इतना अधिक और संकट का काम करने को तैयार न होगा। अपने साथियों के पसीने से

पैदा किए हुए धन पर मनमानी मौज उड़ानी चाहिए, यह वासना उनके मन में कभी उत्पन्न ही नहीं होती। उनका यह उदाहरण, क्या हमारे यहाँ (भारतवर्ष) की सभा सोसाइटियों के संचालक लोग ध्यान में लाने की कभी कृपा करेंगे ?

ऊपर जिन तीन प्रकार के दलों का वर्णन किया जा चुका है उनकी अनेक ट्रेड यूनियनों ने मिल कर एक संयुक्त संस्था भी स्थापित की है। इस संस्था का नाम उन्होंने "वर्कमेंस सेक्रेटेरियट" (Work-men's Secretariate) रक्खा है। लोगों को जो बात जाननी हो अथवा जो सलाह लेनी हो उसमें उन्हें इस संस्था से बराबर सहायता पहुँचती रहती है। संकट में पड़े हुए स्त्री पुरुषों को मित्र भाव से इस संस्था के अधिकारी सहायता पहुंचाते हैं। इसके अलावा जो जर्मन लोग टापुओं में रहते हैं उनके सुख दुःख की खबर भी ये लोग लेते रहते हैं। इन कामों को सुचारू रूप से करने के कारण यह संस्था बहुत ही अधिक लोकप्रिय हो गई है। देश में उसका पद इतना ऊँचा हो गया है कि और कई लोगों ने सर्व साधारण के हितार्थ, इसी ढंग की संस्थाएँ कायम की हैं। इन संस्थाओं की ओर से दीवानी, फौजदारी और औद्योगिक कायदे कानून की बाबत जो सहायता लोगों को चाहिए वह मुफ्त दी जाती है। सन १९०७ में सोशियालिस्ट वर्कमेंस सेक्रेटारियट की संख्या १६ थी और उनके आश्रय में काम करनेवाली शाखा सभाएँ १३२ थीं। इन शाखा सभाओं की संख्या देख कर किसी को भी आश्चर्य हुए बिना न रहेगा।

अब तक जो कुछ कहा गया है, उससे कोई यह

अर्थ न निकाले कि मजदूर लोग अपनी सेना का मार्ग तैयार कर के औद्योगिक संपत्ति के किले पर चढ़ाई करने का मंसूबा कर रहे हैं और पूंजीवाले व्यापारी और कारखानों के मालिक पड़े सोते होंगे। बात यह नहीं है। वर्त्तमान समय में ट्रेड यूनियनों के तत्व का इन लोगों की ओर से जर्मनी में जितना विरोध किया जा रहा है उतना इससे पहले कभी नहीं देखा गया था। और इसमें भी देश के किसी विशेष भाग अथवा विशेष व्यवसाय में इसकी अधिक प्रबलता दिखाई नहीं पड़ती। पश्चिमीय प्रशिया में पत्थर के कोयले, लोहे और फौलाद के कारखानों में मालिकों ने मिल कर सिंडिकेट—सहकारी मंडल—स्थापित किए हैं। इन मंडलों में, यह विरोध जितना प्रबल है उतना अन्य कारखानेवालों में नहीं देखा जाता। ट्रेड यूनियनों के लोगों का भी प्रभाव जितना पश्चिमी प्रशिया में है उतना अन्यत्र कहीं नहीं है। इन दोनों पक्षों की वास्तविक रणभूमि ह्राइन लैंड और वेस्टफालिया प्रांत हैं। सांपत्तिक युद्ध के अनुकूल सब तरह पर वहाँ की स्थिति पाई जाती है।

जर्मनी का सब से बड़ा वर्कशाप–कलागृह–इस प्रांत में ही है। यह वर्कशाप कभी बंद नहीं होता। संपत्ति उत्पादन का काम वँहा अहर्निश चलता रहता है। इस वर्कशाप में काम चलाने का अधिकार जिन लोगों को है उनकी संख्या छः सात से अधिक नहीं है। व्यवसाय वाणिज्य कैसे करना चाहिए और उसमें किस प्रकार यश प्राप्त करना चाहिए इस विषय में उन लोगों की बुद्धि बड़ी विलक्षण और तीव्र है।

धनाढ्य होने योग्य उनमें दृढ़ निश्चय है। लोगों पर कठोरता का नियम चलाने की कला उन्होंने जन्म से ही सीखी है। संवेदना क्या वस्तु है यह वे जानते ही नहीं हैं। परंतु उनमें न्यायशीलता नहीं है. यह हम नहीं कह सकते। हां न्याय का काँटा जरा झुकता हुआ रक्खा जाय, यदि यह उनसे कहा जाय तो यह काम उनसे न होगा। जिस बात का उन्हें एक बार निश्चय हो गया फिर उसमें रत्ती भर भी वे फेरफार नहीं करते। उनकी इच्छाशक्ति अति प्रबल है और राजनैतिक विषयों में उनकी उदारता की कल्पना करने का पता भी नहीं मिलता। प्रशिया में नवीन युग को लाने के काम में इन लोगों ने जो कार्य किए हैं वे संसार में पूर्ण रीति से लोगों पर विदित हैं। राजा के समीपस्थ राज्याधिकारियों–मंत्री अथवा कायदा कानून बनानेवाले लोगों को अपने पक्ष में मिला कर राज्यशक्ति में अधिक शक्ति इन लोगों ने प्राप्त कर ली है। प्रशिया के पूर्वी विभाग के फ्यूडल लार्ड लोगों की शक्ति कम होने का रंग तो दिखाई पड़ता है परंतु आजकल उद्योग भूमि में इन फ्यूडल लार्डों की शक्ति दिनों दिन बढ़ रही है। हजारों ट्रेड यूनियन स्थापित हो जाने पर भी उनकी इन्हें बिलकुल परवाह नहीं है। इस संबंध में यदि कहीं कुछ बात चीत हुई तो वे लोग स्पष्ट कह देते हैं कि—"हमारे घर में हमारी सत्ता हमारे इच्छानुसार ही चलेगी।" ये शब्द अब भी उनके मुख से सुनाई पड़ते हैं। और इसी वाक्य के अनुसार कार्य कर डालने की शक्ति भी उनमें पाई जाती है। सितंबर सन् १९०५ में मनहिम की एक सभा में वेस्टफालिया के

प्रसिद्ध कारखाने के मालिक और एक दो सहकारी सभाओं के सभापति हर किरडाफ ने कारखानेवालों की ओर से जो व्याख्यान दिया था वह पढ़ने योग्य है। उस व्याख्यान में उन्होंने कहा था—"हमारे मजदूर जब चाहते हैं तब अपने हाथ का काम छोड़कर चले जाते हैं, यह दशा बहुत शोचनीय है। जिस काम को मजदूर स्थायी रूप से करेंगे वही काम या व्यवसाय उन्नति को प्राप्त हो सकता है। परंतु इस काम में कायदे कानून की मदद लेने की हमें जरूरत नहीं है। जो मजदूर आज इस कारखाने में और कल दूसरे कारखानें में नाच नाचते फिरते हैं उन्हें अपने बंधन में लाने का जो उपाय हम करना चाहते हैं उसमें किसी को पड़ना नहीं चाहिए। एक मनुष्य ने यह सलाह दी है कि सब मजदूरों की सहकारी सभाओं को सम्मिलित होकर एक ऐसी सभा बनाना चाहिए जो कारखाने के मालिकों से बात चीत करे; परंतु इस सलाह पर हम अमल करने को बिलकुल तैयार नहीं हैं। "सोशल डेमोक्रेटिक" अथवा "क्रिश्चियन" इस नाम को धारण करनेवाली सभाओं से मध्यस्थ का काम लेने की हमारी बिलकुल इच्छा नहीं है। क्योंकि सोशल डेमोक्रेटिक यूनियनों की अपेक्षा क्रिश्चियन यूनियनें अधिक हानिकारक हैं। वर्तमान समाज रचना को हम उलट पलट डालना चाहते हैं, यह बात पूर्वोक्त मंडली कहती तो है परंतु उपर्युक्त मंडली तो मुकाबला करने को तैयार होते ही अपने सामने झूठा निशाना रख कर क्रिश्चियानिटी ही की ओट में युद्ध करती है। सोशल डेमोक्रेट लोगों का उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं

हो सकता, यह बात हम लोगों को मालूम है तो भी धनवान पुरुषों को धर्मोपदेशकों के अधीन करने का इनका प्रयत्न जारी है। मजदूरों के साथ होनेवाले वाद विवाद में कभी कभी सरकार बीच में पड़ जाती है इस बात से भी मुझे बड़ा दुःख होता है।"

ऊपर जो अवतरण दिया गया है, उसके देने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि इस वाद विवाद में कारखाने के मालिकों का क्या कथन है, वक्ता ने सरलतापूर्वक उसे बता दिया है। वक्ता के कथन में विषय को छिपाने अथवा अपने भाव को गुप्त रखने का आभास भी नहीं पाया जाता। हर किर-डाफ आदि कारखाने के मालिकों को यह बात बिलकुल जँच गई है कि मजदूरों की सहकारी संस्थाएँ हानिकारक हैं और उनकी रोक का उपाय अवश्य होना चाहिए। इस काम के लिये उन्हें कानून कायदे की भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और न सरकारी सहायता की ही उन्हें जरूरत मालूम होती है। क्योंकि इन लोगों के नामों का उल्लेख होते ही यह मालूम होता है कि ये ही लोग जर्मनी की सरकार हैं। इन संस्थाओं की ओर दुर्लक्ष्य करने से ये अपने आप ही नष्ट हो जाँयगी और दुर्लक्ष्य करना ही मजदूरों के रोग पर रामबाण औषधि है, यह उनका दृढ़ विश्वास है। यदि मज-दूरों ने अधिक मजदूरी मांगने का प्रस्ताव किया और वह उन्हें उचित जान पड़ा तो फिर थोड़े धन के लिये वे अधिक रगड़ नहीं करते। परंतु यदि उनके प्रस्ताव को अनुचित समझ कर उन्होंने एक बार इनकार कर दिया तो फिर चाहे ब्रह्मा उतर

आवें तो भी वे किसी की माननेवाले नहीं । वहाँ पर बड़े बड़े कारखानों की व्यवस्था इतनी दूरदर्शिता और दृढ़ विचारों के अनुसार की गई है कि लोगों को उनका उदाहरण ग्रहण करना चाहिए। कारीगर लोगों के हितार्थ जो आसानियाँ कानून के अनुसार होनी चाहिएँ उनके अलावा और भी अनेक आसानियाँ उन्होंने स्वयं कर दी हैं परंतु कारीगर लोगों की सभा का नाम सुनते ही वे नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं, फिर उनके साथ बात करना तो दूर ही रहा ।

वेस्टफालिया के कारखाने के मालिकों का यह अभिमान-युक्त व्यवहार सामान्य लोगों को बहुत करके पसंद नहीं आता और इसी कारण सन् १९०५ में जब कोयले की खानवालों ने हड़ताल की तब अंत में कारखानेवालों को हार माननी पड़ी। यह हड़ताल इतनी भयंकर हो गई थी कि अंत में सरकार ने बीच में पड़ कर आवश्यक कानून बना कर हड़ताल का अंत किया। इस हड़ताल से एक साल में कोयले की १५ खानवाली कंपनियों को पांच लाख पौंड की हानि उठानी पड़ी।

इसी कारण बड़े बड़े कारखानेवालों को मजदूरों की संघ-शक्ति रुचिकर नहीं मालूम होती और इसी लिये उन्होंने भी अपने "असोसियेशन" अर्थात् मंडल बनाने आरंभ कर दिए हैं। इन मंडलों का कार्यक्षेत्र दिनोंदिन बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। ट्रेड यूनियनों को नष्ट करना और उसी के साथ सोशल डिमाक्रेसी का बीज नाश करना ही इन असो-सियेशनों का मुख्य उद्देश्य है।

.स वाद विवाद में सरकारी सहायता का भरोसा नहीं

करना चाहिए ऐसा निश्चय कारखाने के मालिकों ने कर रक्खा है। मजदूरों की यूनियनों को कानून द्वारा बंद कराने का प्रयत्न भी असंभव है, यह बात भी वे लोग जानते हैं। अतएव बहिष्कार के तत्व का अब उन्होंने सहारा लिया है। संघशक्ति उदय होते ही बहिष्कार का उपाय लोगों की समझ में आप ही आ जाता है। यह बात अनुभव से भी सिद्ध हो चुकी है। वायव्य प्रांत के पत्थर का कोयला, लोहा, फौलाद और रसायनिक द्रव्य तैयार करनेवाले बड़े बड़े कारखानों में सोशियालिस्ट लोगों में जिनकी गणना है, उनको, काम पर यथाशक्ति नहीं लेते। काम करने के लिये आए हुए नए आदमी का पूर्व इतिहास जानने के उद्देश्य से उन्होंने खुफिया पुलिस की तरह अपना एक अलग विभाग ही बना रक्खा है। बड़े बड़े कारखानों में "ब्लेक लिस्ट" तैयार करके रक्खी जाती है। इन लिस्टों को कारखानेवाले आपस में बहुत कुछ उपयोग में लाते हैं और इनके तैयार करने का काम बहुत गुप्त रीति से होता है। सोशियालिस्ट लोगों को नया काम तो मिलता ही नहीं, यदि कोई पुराना नौकर हो तो उसे भी पता लगने पर अर्धचंद्र दिया जाता है। कुछ कारखानेवालों ने यह नियम कर रक्खा है कि किसी एक कारखाने से यदि कोई आदमी चला गया तो फिर उसे कोई दूसरा कारखानेवाला तीन से लेकर छः महीने तक नौकर नहीं रख सकता। जब कभी इन ब्लेक लिस्टों का पता मजदूरों को लग जाता है तब बहुत से मजदूर कारखाने के मालिकों पर इज्जत की हतक का दावा अदालत में करते हैं, और उनसे अपना हर्जाना

वसूल कर लेते हैं। इस प्रकार ये वाद विवाद के कड़ुए फल, भविष्यत् में, अनेक संकट उपस्थित करेंगे, इसमें संदेह नहीं।

परंतु जर्मनी के बेवेरिया और बुर्टेंवर्ग प्रांतों में इसके विपरीत स्थिति दिखाई पड़ती है। वहां के कारखानेवालों को ऐसा मालूम होता है कि प्रत्येक मज़दूर के साथ वेतन संबंधी वाद विवाद करने की अपेक्षा यूनियनों के नेताओं से बातचीत करना ही अधिक अच्छा है। अतएव कारखानेवालों की सिंडिकेट और मजदूरों की ट्रेड यूनियनें आपस में मिल कर बहुत सी बातों का निर्णय कर लेती हैं।

वर्तमान काल में, मजदूरों की इस अशांति का, व्यावहारिक दृष्टि से भी अब कुछ विचार करना चाहिए। संसार में चारों ओर मजदूरों की यह पुकार मची हुई है कि "वेतन अधिक मिलना चाहिए और काम लेने के समय में कमी होनी चाहिए।" जर्मनी में मजदूरों का वेतन सरासरी तौर पर बहुत कुछ बढ़ा है, इसे वे लोग भी स्वयं स्वीकार करते हैं। परंतु इसी के साथ वे यह भी कहते हैं कि मालिकों की पूँजी और उससे होनेवाले लाभ को देखते हुए हम लोगों के वेतन में उचित वृद्धि नहीं हुई है। देश के भिन्न भिन्न प्रांतों में मजदूरी की दर में बहुत कुछ अंतर है। एक ही काम में, ह्राइन लैंड, वेस्टफालिया और बर्लिन के मजदूरों को अधिक वेतन मिलता है और सेक्सन के कुछ भागों में और साधारण तौर पर दक्षिण प्रांत के सब स्थानों में वह कम मिलता है। ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में जिस व्यवसाय के मजदूरों को जो वेतन मिलता है वह जर्मनी में सब से अधिक मिलने

वाले वेतन से भी अधिक है। जिन व्यवसायों में विशेष कुशलता की आवश्यकता नहीं है उनमें अवश्य दोनों देशों में बराबर वेतन मिलता है; यदि कुछ फरक भी है तो बहुत कम।

काम करने के समय में भी बहुत कुछ सुधार हुआ है। परंतु व्यवसाय विशेष और स्थल विशेष में वह फरक अब भी बना हुआ है। प्रशिया की खानों में जमीन के भीतर काम करनेवाले मजदूरों को कानून के अनुसार आठ घंटों तक काम करना पड़ता है। परंतु साधारण तौर पर काम करने का समय दस घंटा नियत किया गया है। कुछ व्यवसायों में विशेषतः बुनने के काम में ग्यारह घंटा काम करने का समय रक्खा गया है। कारखानेवालों की सहूलियत को देख कर सर्वत्र एक सा ही समय रक्खा जाय, यह तो असंभव है, यह देख कर सोशियालिस्ट दल के लोग पार्लियामेंट में समय समय पर प्रश्न उपस्थित किया करते हैं। परंतु वहाँ भी उन्हें जैसा यश मिलना चाहिए वैसा अभी तक नहीं मिला। दस घंटे काम करने के लिये नियत किए जाँय, इस बात को मानने के लिये वे तैयार हैं ऐसा मालूम होता है। परंतु यहाँ पर भी आ कर वे ठहर जाँयगे, यह किसे विश्वास है। आठ घंटे का दिन मानना, उनका अंतिम साध्य है। परंतु एकदम ऐसा होना कठिन है अतएव नौ घंटे का दिन मानने के लिये कुछ दिनों तक उन्हें बीच में ठहरना पड़ेगा। परंतु अंतिम साध्य स्थान पर पहुंचे बिना वे कभी माननेवाले नहीं हैं।

काम के घंटे कम करने का प्रश्न पार्लियामेंट में उठते ही

यह प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है कि काम के घंटे कम करने से मजदूर लोग बचे हुए समय का दुरुपयोग करेंगे।

प्राशिया के कारखानों पर नियत किए हुए एक इंसपेक्टर ने अभी हाल में ही अपनी एक रिपोर्ट में बड़ी गंभीरता के साथ यह बात सिद्ध कर के दिखलाई है कि काम के घंटे कम करने से उस प्रांत में 'दासी पुत्रों' की संख्या बढ़ रही है। परंतु समय का दुरुपयोग करने का भय व्यर्थ है। क्योंकि वर्तमान पद्धति से सप्ताह के ६ दिनों में रोज तेरह घंटे प्रत्येक मजदूर को घर के बाहर व्यतीत करने पड़ते हैं। केवल रविवार को कुछ घंटे आमोद प्रमोद के लिये बच रहते हैं। कानून से रविवार छुट्टी का दिन नियत किया गया है परंतु कई प्रांतों में इस दिन भी मजदूरों से काम लेने की प्रथा है।

परंतु विपक्षी लोग इस विषय में यह तर्क करते हैं कि यदि काम के घंटे कम कर दिए जाँय तो एक मजदूर से जितना काम होना चाहिए उतना काम होने का विश्वास कौन दिलावेगा? कुछ जगहों पर आठ घंटे काम होने का नियम करने से भरपूर काम होता है, ऐसे उदाहरण भी पाए जाते हैं। परंतु केवल अधिक आराम दिलाने के विचार से ही काम के घंटे कम कराने का अर्थ हो और कम होने का कोई भय न हो तो फिर तकरार और वाद विवाद का कोई काम ही नहीं है। परंतु इसके साथ मजदूरों का यह भी उद्देश्य है कि काम के घंटे कम करने से काम कम होगा और अधिक काम होने के लिये और भी मजदूरों को रखने की आवश्यकता होगी और इस प्रकार अपने संगी साथी जो इधर उधर

बेकार भटकते फिरते हैं उनको सरलतापूर्वक रोजगार मिल जायगा।

इंग्लैंड में मजदूरों को सरकार और म्युनिसिपैलिटियों की तरफ से उद्योग धंधों के काम बताने में जैसी सहायता पहुँचाई जाती है वैसी जर्मनी से नहीं पहुँचाई जाती। जर्मन सरकार का उद्देश्य अब तक इस विषय में चुपचाप रहने का है मजदूर लोगों के साथ उसकी सहानुभूति अवश्य है। परंतु जीवन बीमा करने और कारखानों के नियम बनाने के कायदों (Factory legistation) को पास कर देने से कारखानेवालों पर पहले ही अधिक बोझ लद गया है। अब यदि और जोर दिया जाय तो वे और भी अधिक बोझ से दब जायँगे, इस बात का उसे बड़ा भय है। कुछ कारखानों में जो काम मजदूरों से लिया जाता है, वह उनकी शक्ति से बाहर है, यदि यह भार कम किया जाय तो उससे उनका और भविष्यत् में उनकी संतान का कल्याण होगा; इस विषय में भी सरकार को कुछ संदेह नहीं है। एक जर्मन राजनीतिज्ञ ने सन १९०५ में कहा था—"ज राष्ट्र हृष्ट पुष्ट हैं और जिनमें कार्य करने की क्षमता है, उन्हीं का भविष्य काल बहुत उज्वल है। साधारण जनता को शारीरिक शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करना मानो अपनी मातृभूमि की शक्ति और कल्याण बढ़ाने का प्रयत्न करना है।" यह कथन अक्षरशः सत्य है। परंतु उसी साल काम के घंटे कम करने का प्रश्न जब पार्लियामेंट में विचारार्थ उपस्थित किया गया तब ये ही सज्जन मजदूरों के विपक्ष में भाषण करने लगे। स्वयं प्राशिया के राजा ने

कई बार इस प्रकार कहा है कि "सरकार की देख-रेख में चलनेवाले कारखाने उदाहरण स्वरूप होने चाहिएँ।" परंतु एक बार जब एक सरकारी कारखाने के मजदूरों ने अपना वेतन बढ़ाने के लिये सरकार से बिनय की तब उस विनयपत्र पर राजा के मंत्री ने यह उत्तर दिया—"इस काम में सरकार निज के कारखानेवालों के आगे पैर बढ़ाने को तैयार नहीं है।" परंतु सरकार मजदूरों को अधिक वेतन नहीं देती तो भी सामाजिक हित की दृष्टि से मजदूरों की स्थिति सुधारने की ओर विशेष ध्यान रखती है। अर्थात् सरकार ने उनके रहने के लिये हवादार मकान बनवा दिए हैं, पेंशन देने की व्यवस्था की है और छुट्टियों की संख्या बढ़ा दी है। इस प्रकार कम वेतन देने की कसर पूरी हो जाती है, इसमें संदेह नहीं।

म्युनिसिपैलिटियों की दशा भी पहले ऐसी ही थी। परंतु कुछ दिनों से उनके विचारों ने भी पलटा खाया है। इसका कारण यह है कि म्युनिसिपेलिटियों में मजदूर दल के लोगों का अब बहुत कुछ प्रवेश होने लगा है। अब ऐसी "टाउन कमेटियाँ" बहुत कम देखने को मिलेंगी जिनमें "लेबर पार्टी" अथवा "सोशियालिस्ट पार्टी" के सभासद न हों। कौंसिलों में इनकी संख्या कुछ अधिक नहीं है। परंतु थोड़े लोग ही क्यों न हों, नका रोना धोना बराबर जारी ही रहता है और जब से उनका प्रवेश इन संस्थाओं में होने लगा है तब से सरकारी नमूने पर बहुत सी कमेटियों ने मजदूरों के सुख के साधन बढ़ाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।

आठवां अध्याय।

औद्योगिक सम्मेलन की योजना।

पूँजीवालों और मजदूरों में किस प्रकार का संबंध है इसका विवेचन अब तक किया गया; उससे पाठकों को यह स्पष्ट ज्ञात हो गया होगा कि दोनों में कितना अधिक वैमनस्य है। यह वैमनस्य एक स्थिर बात (Settled fact) हो गई है। योग्यायोग्य का विचार कर के काम करना जर्मन लोगों का साधारणतः स्वभाव ही है। परंतु इस काम में इस स्वभाव का परिचय न मिलना यह बड़े आश्चर्य की बात है। वर्त्तमान समय में, उभय पक्ष का, वादविवाद यदि बहुत दिनों तक चलता रहा और परस्पर की शक्ति की परीक्षा होती रही और फिर सरकार अथवा किसी अन्य ने मध्यस्थ होकर दोनों पक्ष के लोगों को समझा बुझा कर वाद मिटाने का प्रयत्न किया तो वह प्रयत्न निष्फल जायगा, यदि ऐसा भविष्य किया जाय तो कुछ अनुचित न होगा। इस प्रकार के युद्ध का जर्मनी को अभी अनुभव नहीं है। दोनों ओर के बलाबल का अभी ठीक ठीक पता लगा नहीं है। सर्वत्र अभी नया जोश मौजूद है। दोनों का मेल होने से पहले एक भीषण युद्ध होना चाहिए, यह बात दोनों पक्ष के लोग समझते हैं और वादविवाद का निर्णय होने तक कितनी भी हानि हुई तो फिर उस हानि को उठाने के लिये दोनों पक्षवाले तैयार हैं।

इतना होने पर भी वर्त्तमान समय का वादविवाद मिटाने के अनेक मार्ग ढूँढ़े जा रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में खास खास व्यवसायों में होनेवाले वादविवाद का निर्णय करने के लिये पंचायतें स्थापित की गई हैं और उनका काम बड़ी उत्तमता से चलता है। ऐसी पंचायतें जर्मनी में अब तक कायम नहीं हुई हैं। कोयले की खानों और कुछ विशेष प्रकार के व्यवसायों में "वर्क्समेन कमेटी" स्थापित की जावें इस बात का उल्लेख "इंडस्ट्रियल कोड" में किया गया है। कमेटी के मेंबरों का चुनाव मजदूरों के मतानुसार होता है। चुनाव हो जाने और कमेटियाँ स्थापित हो जाने के पश्चात् मजदूरों के हिताहित के प्रश्नों पर विचार उनके द्वारा उनकी सलाह ले कर किया जाता है। मजदूरों के अभावों के दूर करने का यह मार्ग कारखाने के मालिकों को पसंद नहीं है। इनकी सहायता से अपने अधिकारों में विना कारण रुकावट होकर उनका स्वरूप संकुचित होता जाता है। अपनी तकलीफों को कारखाने के मेनेजर द्वारा मालिकों तक पहुँचाना चाहिए इस पुरानी पद्धति को त्याग कर मजदूर अपने संघ स्थापित करें और उनके द्वारा वे बातें मालिकों के कान तक पहुँचे। फिर एक के लिये नहीं सबों के लिये; बताइए इतनी कवायद करना कौन पसंद करे? परंतु कहीं कहीं उभय पक्ष की सम्मति से ही इस प्रकार की कमेटियाँ कायम हुई हैं और उनका काम सरलतापूर्वक चलता है जिससे दोनों पक्षों को लाभ होता है।

उभय पक्ष के बखेड़ों को कोई तीसरा आकर तै करे, जब

यह बात दोनों मान लें तब उसका निर्णय सरकार द्वारा स्थापित " इंडस्ट्रियल कोर्ट " करने के लिये तैयार हैं। जिन शहरों की आबादी बीस हजार से ऊपर है उन शहरों में ऐसे कोर्ट पहले से ही स्थापित किए गए है। परंतु कम आबादी के शहरों में जब उनका कायम किया जाना उपयोगी होगा और जब यह बात सरकार के ध्यान में आ जायगी तब ऐसी जगह भी अदालतें कायम करने की कानून में व्यवस्था रखी गई है। इसके अलावा कानून में यह भी नियम रक्खा गया है कि दोनों पक्षों की ओर से नियमित संख्या के लोगों की दस्तखती अर्जी या निवेदन-पत्र आने पर अदालत खोलने और उसमें आधे पंच कारखाने के मालिकों की ओर के और आधे मजदूर पक्ष के लिये जावें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। परंतु जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उससे जाना जाता है कि जितना लाभ मजदूरों को इन अदालतों से उठाना चाहिए उतना लाभ वे नहीं उठाते।

कारखाने के मालिकों और उनके यहाँ काम करनेवाले कारीगरों की सलाह से " वर्कमेन कमेटी " जो कायम भी हो गई हैं तो भी इस व्यवस्था का स्वरूप खानगी है। अतएव "चेंबर आफ कामर्स ऐंड एग्रीकलचर" के नमूने पर "चेंबर्स आफ लेबर " की स्थापना सरकार की ओर से होनी चाहिए, इसका प्रयत्न आज कई वर्षों से जर्मन पार्लियामेंट में ट्रेड यूनियनों और लेबर पार्टी की ओर से हो रहा है। सार्वभौम सरकार ऐसी चेंबर बनाने को तैयार है परंतु उसका कथन है कि उसमें आधे मेंबर तो मजदूर लोग और आधे कारखानों

के मालिक चुन दें। परंतु स्थिति को देखते हुए यह कह सकते हैं कि क्या इस चेंबर से कोई विशेष लाभ होगा ? मजदूर दल के लोग कहते हैं कि इन चेंबरों में सारे मेंबर हमारे पक्ष के ही चुने हुए होने चाहिएँ। कारखानेवालों का यह कथन है कि यदि हम मजदूर दल के लोगों का कहना मान लें तो कल फिर ये हमारी क्या दशा बनावेंगे, और ये जा कर कहाँ ठहरेंगे, यह कौन कह सकता है ? इसके आगे भी ये एक पैर और बढ़ावेंगे और कहने लगेंगे कि हमारे पक्ष का एक सार्वभौम मंडल (Imperial Ministry) अथवा बोर्ड होना चाहिए। मजदूरों के उपस्थित किए हुए प्रश्नों अथवा उनके अन्य विषयों का निर्णय वर्तमान व्यवस्था के अनुसार "मिनिस्ट्री आफ दी इंपीरियर" नामक मंत्रिमंडल द्वारा होता है। उनका यह अधिकार कम करके एक स्वतंत्र "लेबर मिनिस्ट्री" बनाने के लिये सरकार तैयार नहीं है। इस विषय में सरकार का यह कहना है कि मजदूरों का विषय अन्य विषयों के साथ शामिल होने से इस गाँठ को छुड़ा कर केवल मजदूरों के विषय का निश्चय करना जरा कठिन काम है और ऐसा निश्चय न होने से मजदूर जो चाहते हैं वैसी व्यवस्था से अन्य विभागों में गड़बड़ी पड़ जाने का बहुत भय है। सरकार का यह कथन बहुत कुछ युक्तिसंगत है। घर बनाने के काम में सुधार करना, कारखानों और पाठशालाओं की आरोग्य व्यवस्था, कारखानों की देखरेख, बीमा के कायदे आदि इसी प्रकार के और बहुत से प्रश्न हैं जिनमें मजदूरों

के हिताहित की बातों की मर्यादा बाँधना प्रायः असंभव ही है।

फुटकर व्यवसायों में और विशेष करके इमारत के कारखानों में मजदूरी निश्चित कर देने की पद्धति आज कल शुरू हो गई है और इसी कारण नियमित समय की मजदूरी के बखेड़े बहुत से उत्पन्न नहीं होते। इस व्यवस्था से कुछ व्यवसायों में कुछ समय तक के लिये मजदूरी का प्रश्न ही उठ गया है। परंतु इससे क्या मुख्य वाद विवाद का निर्णय सदा के लिये हो गया? निश्चित समय के लिये काम करने का वादा करने से विशेष करके लाभ मजदूरों को ही मिलता है। वेतन की दर निश्चित करते समय कम से कम वेतन तै किया जाता है। परंतु उतना काम पूरा हो जाने पर फिर नया इकरारनामा लिखते समय मजदूर अधिक वेतन माँगने लगते हैं। और वेतन के शिखर पर पहुँचने की सोपान-परंपरा के अनुसार वे अपने विचारों और इच्छाओं को बढ़ाते ही चले जाते हैं और मूल विवाद "अधिक वेतन और काम के घंटे कम करने का" प्रश्न पुनः आकर उपस्थित हो जाता है। परंतु इस इकरारनामे की व्यवस्था से सब मजदूरों को समान लाभ नहीं मिलता। जिन मजदूरों को अधिक परिश्रम करने की शक्ति नहीं, केवल उन्हीं को इससे लाभ है। परंतु जिन्हें अधिक वेतन पाने की ठसक है उन्हें लाभ के बदले उलटी हानि है। इसके अतिरिक्त इकरारनामे के लिखे जाने पर उसमें एक यह नियम रहता है कि यदि इकरार पूरा न किया जायगा तो जो हानि होगी

वह पूरी की जायगी परंतु यदि इकरार के अनुसार काम न हुआ और मामला अदालत तक गया तो उसमें कानूनी पेंच निकल आने पर न्यायाधीश द्वारा क्या निर्णय होगा, यह समझ नहीं पड़ता। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि इकरारनामा लिख कर मजदूरों का वेतन निश्चित कर देने पर मजदूर लोग काम से दिल चुराने लगते हैं। परंतु यह आक्षेप उचित नहीं। बवेरिया की सरकार ने इकरारनामा लिख कर काम करने की पद्धति को उत्तेजना दी है और जहां जहां संभव हो वहां वहां इसका प्रचार करने का प्रयत्न करने के लिये फेक्टरी इंसपेक्टरों को आज्ञा दी है।

कारखानेवालों को होनेवाले नफे में से मजदूरों को हिस्सा देने की पद्धति जर्मनी में पसंद नहीं की जाती। इमारत के कारखानों में बोनस (इनाम) देने की प्रथा देश के कई प्रांतों में पाई जाती है। कितने ही कारखानेवाले वर्षारंभ अथवा अन्य किसी त्योहार पर ग्रेचुइटी भी देते हैं। परंतु लाभ में से हिस्सा देने को कोई तैयार नहीं! हां, वे लोग इतना तो करते हैं कि मजदूरों और उनके बाल बच्चों के कल्याणार्थ अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ अपने पास से धन लगा कर करते हैं। इनमें से कुछ व्यवस्थाएं तो कानून के कारण उन्हें करनी पड़ती हैं परंतु स्वतः अच्छेपन के कारण उनका पैर कानून के आगे बहुत कुछ जाता है। कोयले, लोहे, फौलाद, रसायनिक पदार्थ, बुनाई आदि के बड़े बड़े कारखानों में बहुत सी आसानियां कर दी गई हैं। बीमा-फंड कानून के अनुसार ही उन्हें कायम करना पड़ता

है। इसके अतिरिक्त पेंशन और "बेनिफिट फंड" खोले गए हैं और इस फंड से मजदूरों के बाल बच्चों को उनके पीछे सहायता दी जाती है। त्योहारों और गर्मी की छुट्टियों में मजदूरों के बाल बच्चों को दावतें दी जाती हैं। कितने ही बड़े बड़े कारखानों में शराब, अनाज, दूध वगैरह की दूकानों और भोजनालय आदि का भी प्रबंध किया गया है, जहां कम मूल्य पर खाने की अच्छी चीजें मजदूरों को मोल मिलती हैं। मजदूरों के आराम के लायक मकान कारखानों के पास ही बनाने का प्रबंध भी अभी थोड़े दिनों से ही हुआ है। इस काम के लिये कारखाने के मालिकों को धन की आवश्यकता हो तो सरकार से कम ब्याज पर रुपया उधार देने की भी व्यवस्था की गई है। कारखानों के पास ही मजदूरों के लिये रहने को मकान बनाने से दो लाभ हैं। यह लाभ बड़े बड़े शहरों से दूर फासले पर जो कारखाने हैं, उन्हें स्पष्ट मालूम हो जाता है। मजदूरों को हवादार मकान मिलने से कारखाने के मालिकों को मजदूरों का टोटा नहीं पड़ता। जिन प्रांतों में कोयले की खानें हैं उन प्रांतों में इंग्लैंड के समान ही खानों में काम करनेवाले लोग, खानों के मालिकों के बनाए हुए मकानों में ही रहते हैं। बड़े बड़े शहरों के बाहर बनाए हुए मकान हर प्रकार से सुखदायक होते हैं। वे मजबूत और लंबे चौड़े होते हैं। उनके आस पास की जमीन रमणीक होती है और वहां की आबहवा भी स्वास्थ्यकर होती है। शहरों के मैले कुचैले मकानों का जो किराया उनको देना पड़ता है उससे कम किराया उन्हें इन मकानों का देना पड़ता

है। कई स्थानों पर तो मजदूरों के लिये जो घर बनाए गए हैं वे इतने अच्छे हैं कि मध्यम श्रेणी के लोगों को अपने घरों में रहने से उतना सुख शायद ही मिलता हो जितना इनमें मिलता है।

तथापि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मजदूरों पर उनके मालिक जो उपकार करते हैं, उसका ज्ञान उन्हें जितना होना चाहिए नहीं है, यह बात स्वीकार करनी पड़ती है। हमेशा नहीं तो बहुत अवसरों पर इसका सारा दोष मालिकों के मत्थे मढ़ा जाता है। यदि कोई पुरस्कार देना हो तो उसके तुरंत देने में ही शोभा है। कुछ शर्तें लगा कर देने से उसकी शोभा नष्ट हो जाती है और मजदूरों को यह प्रतीत होने लगता है कि ऐसे पुरस्कार देने का उद्देश्य हमारा कल्याण नहीं है वरन इससे मालिकों का कोई स्वतः का ही लाभ विशेष है। पेंशन फंड अथवा उसीके समान अन्य फंडों के लिये मजदूरों की इच्छा हो अथवा अनिच्छा, चंदा ले कर धन इकट्ठा करना और समय पड़ने पर या तो पेंशन देना अथवा जितना चंदा लिया है कम से कम उतना वापस कर देना, यह सब मालिकों की इच्छा पर ही अवलंबित रहता है। परंतु यह नियम मजदूरों को बिलकुल पसंद नहीं है। क्रुप ❀ नाम के प्रसिद्ध कारखाने में मजदूरों से पेंशन के लिये जबर्दस्ती चंदा लिया जाता है। परंतु पेंशन देने

❀ क्रुप नाम का एक कारखाना जर्मन लोगों की उद्योगप्रियता और अपूर्व साहस का जीता जागता चित्र है। इस कारखाने में लोहे और फौलाद का सामान खास कर युद्ध सामग्री तैयार होती है। यह

का समय आने पर मालिक अपनी इच्छा या अनिच्छा का प्रयोग करके अपनी न्यायप्रियता का परिचय देते हैं। कारखाना छोड़ कर यदि कोई चला भी जाय तो उसके चंदे की रकम फिर उसे वापस नहीं दी जाती। यह नियम बहुत

कारखाना पहले पहल सन १८१० में पीटर फ्रेडरिक क्रुप ने एसन् गाँव में खोला था। यह गाँव उस समय पास के लोगों को भी विशेष रूप से मालूम न था। आरंभ में कारखाना बहुत छोटा था। सन् १८११ में केवल एक भट्ठी थी। सन् १८१८ में कुछ कला-गृह (Work-shops) भी तैयार हुए। तो भी कारखाने के उत्तम प्रकार से चलने के कोई चिह्न दिखाई न पड़े। जो कुछ उसके पास था उसने सब इस कारखाने की उन्नति में लगा दिया परंतु कुछ भी यश प्राप्त न हुआ और अंत में वह इसी सोच में सन् १८२६ में मर गया। उसके पुत्र आलफ्रेड ने साहसपूर्वक अपने पिता के चलाए कारखाने को जारी रक्खा। आलफ्रेड का जन्म एक झोपड़े में हुआ था। वह झोपड़ा स्मारक स्वरूप अब भी मौजूद है। बाल्यावस्था में आलफ्रेड ने बहुत दुःख उठाए थे। जब से आलफ्रेड ने कारखाने का काम अपने हाथ में लिया उसे बहुत कुछ यश प्राप्त हुआ। इस कारखाने की बनी तोपें और बंदूकें विदेश में बहुत खपने लगी हैं। आलफ्रेड के पश्चात् कारखाने की बहुत उन्नति हुई। अब उसका पुत्र फ्रेडरिक क्रुप कारखाने का मालिक है। उसे ४० लाख डालर हर साल इनकम टेक्स देना पड़ता है। वर्तमान समय में इससे बड़ा और कोई कारखाना नहीं है। इस कारखाने पर जर्मन सम्राट् कैसर की बड़ी कृपा है। कैसर ने कई बार फ्रेडरिक को सरदार बनाना

वर्षों से इस कारखाने में जारी है। कुछ दिन हुए तब एक मजदूर ने मालिक पर दीवानी में नालिश कर दी। इस दावे का निर्णय वादी के पक्ष में हुआ। इस प्रकार के दावों का फैसला हो जाने पर अपील करने का नियम कानून में नहीं रक्खा गया है। इस कारण वादी को अधिक लाभ प्राप्त होता है। इस स्थिति को सुधारने के लिये जबरदस्ती चंदा वसूल करने के कानून में सुधार होने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। दीवानी अदालतों में वर्तमान समय के अनुसार दो साल के जमा किए चंदे की रकम में अधिक जमा की हुई पिछली रकम वापस नहीं मिलती। इसलिये अपने एक साथी को मालिकों के विरुद्ध यश प्राप्त हुआ देखकर बहुत से मजदूरों ने मालिकों के विरुद्ध अदालत में अपने अपने दावे कर दिए और दो साल की जमा की हुई रकम वापस कर ली। पेंशन, प्रीमियम और सब प्रकार की ग्रेच्युइटी आदि केवल मालिकों के वचनानुसार ही भविष्यत् में मिलती है परंतु इनके पाने के नियम इतने अधिक असमाधानकारक और अनिश्चित हैं कि जिसके कारण

चाहा और कई पदवियां देनी चाहीं परंतु उसने लेना स्वीकार नहीं किया। कैसर कई बार फ्रेडरिक के मेहमान होकर कारखाने में गए हैं और यहां कई एक दिन रहकर इन्होंने कारखाने के काम को अपने आंखों से स्वयं देखा है। वर्तमान युद्ध में लीज और नामूर के प्रसिद्ध किले जिन १७ इंची हाविट्जर तोपों से नष्ट हुए वे इसी कारखाने की बनी थीं।

जिस किसी को मालिकों के पास से धन मिल जाय उसकी गणना देवताओं में होनी चाहिए। इस प्रकार का धन पाने का अधिकार किसी को नहीं है। यह पहला नियम ! अर्थात् उसका देना अथवा न देना मालिकों की मर्जी पर है ? मालिक भी अपने हाथ में न्यायदंड लिये बैठे हैं। जहां मजदूर से जरा भी एक बार भूल हुई फिर क्या ! देते समय उसे अंगूठा दिखाया जाता है। फिर उसने अपना काम बिना किसी प्रकार की भूल किए हुए कैसा ही अच्छा क्यों न किया हो, एक बार उसके हाथ से कुछ न कुछ अपराध हो ही जाता है, फिर तो जन्म भर के किए कराए काम पर सहज ही पानी फिर जाता है।

कारखाने के पास घरों में किराए पर रहने से मजदूरों को कठिनाइयाँ भी बहुत सी उठानी पड़ती हैं। इन घरों में रहने से उनकी स्वतंत्रता कम हो जाती है। इसके सिवाय मालिक और मजदूरों के परस्पर अधिकार क्या हैं, यह बात उपस्थित होने पर मजदूरों को बराबरी के नाते से अपना आपस में निर्णय करने के लिये बोलने का अवसर नहीं मिलता। इन असुविधाओं के कारण मजदूरों को मालिकों के मकानों में नहीं रहना चाहिए, ऐसा प्रयत्न ट्रेड यूनियनों की ओर से हो रहा है। किराए के नियम कड़े न होकर त्रास-दायक अवश्य होते हैं। जब तक मनुष्य काम करता है तब तक तो उसके लिये घर; परंतु जहाँ काम से अलग हुआ कि उसे तुरंत मकान खाली कर देना ही चाहिए। उसे मकान खाली करने के लिये कुछ दिन पहले सूचना देनी

चाहिए, कानून में इसके लिये कोई नियम नहीं है। एक दम घर छोड़ने पर उस बेचारे को अपने बाल-बच्चे ले जाकर कहाँ रखने चाहिएँ ! यह दशा अत्यंत दुःखदायी और दोषयुक्त है। अतएव इसमें सुधार होने के लिये देश में सर्वत्र प्रयत्न हो रहा है।

परंतु इस विषय में कोई व्यापक सिद्धांत स्थिर करना अन्याय होगा। बड़े बड़े कारखानेवालों में से बहुधा कारखानेवालों के मालिकों के हृदय में मजदूरों के कल्याण करने की बुद्धि जाग्रत है और उन्होंने कायदे कानून की योजना होने से पहले ही मजदूरों की दशा पर ध्यान रख कर, उनकी आपत्तियों का भार हलका करने के लिये बहुत सी सुविधाएँ पैदा कर दी हैं। इससे उनकी परोपकार बुद्धि और मजदूरों के विषय में अपनत्व प्रगट होता है। इतना ही नहीं सरकार की अपेक्षा उनमें अधिक दूरदर्शिता है, इस बात का भी पता चलता है। कानून के अनुसार जो पेंशन फंड कायम है उसीके बराबरी अथवा मुक़ाबले का फंड बीमारी और पेंशन के लिये खोल रक्खा गया है। यदि कोई मजदूर बीमार पड़ा, हाथ पैर से लँगड़ा लूला हो गया, अथवा वृद्धावस्था के कारण बिलकुल थक गया तो उसे कानून के अनुसार जो सहायता मिलनी चाहिए वह मिल कर, कारखाने के मालिकों ने अपनी परोपकार बुद्धि से जो सहायक फंड कायम कर रक्खे हैं उनमें से भी सहायतार्थ धन प्रदान किया जाता है।

ववेरिया की सरकार मजदूरों के हित के लिये जितनी चिंता रखती है उतनी और प्रांत की सरकारें नहीं रखतीं।

वहां की सरकार ने एक रपोर्ट अभी हाल में ही प्रकाशित की है जिसमें उसने यह प्रकट किया है कि बवेरिया प्रांत में कारखाने के मालिकों ने मजदूरों के हित के लिये कौन कौन सी संस्थाएँ कायम की हैं और उनके द्वारा मजदूरों से किस प्रकार परामर्ष लिया जाता है। इस विषय में पहले पहल सरकार ने सन् १८७४ में तहकीकात की थी। परंतु वर्तमान रिपोर्ट में उसके बाद की ही सब बातें दी हुई हैं। सरकार की इस तहकीकात से यह बात स्पष्ट झलकती है कि मजदूरों के कल्याणार्थ सरकार को कितनी चिंता है और उस प्रांत के बहुत से कारखानेवाले भी मजदूरों के सुख के लिये कुछ न कुछ कार्य करते ही रहते हैं। सन् १८७४ की अपेक्षा अब मजदूरों की स्थिति बहुत कुछ सुधर गई है। तथापि इस बीच में एक महत्व का अंतर पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। तीस वर्ष पहले हड़ताल का कोई नाम भी नहीं जानता था। पहले के मजदूरों में जो कृतज्ञता बुद्धि थी वह अब आजकल के मजदूरों में नहीं है। और इसी कारण मजदूरों पर किए हुए उपकारों का कोई महत्व नहीं मालूम होता। ये बातें कारखानें के मालिकों के मुख से निकलने लगी हैं और यह भेद भाव सरकार की भी दृष्टि में आ गया है।

मजदूरों की मनोवृत्तियों ने ऐसा पलटा क्यों खाया, इसकी मीमांसा भिन्न भिन्न मार्गों से की जानी चाहिए। उपकार करनेवाले को जो काम अधम दिखाई पड़ता है वही काम अपकार करनेवाले को वैसा नहीं दिखाई पड़ता। मजदूर लोगों का कथन है कि "हममें कृतज्ञता की बुद्धि नहीं है,

यह बात नहीं है । परंतु हमें अधिक स्वतंत्रता चाहिए, और लोगों की सहायता बिना हममें अपनी गृहस्थी चलाने की क्षमता आनी चाहिए और इसके लिये ही हमारे सब प्रयत्न हो रहे हैं । वर्तमान औद्योगिक युग में काम देनेवाले मालिक के भरोसे पर ही हमारे कुटुंब को रहना चाहिए इस भावना के अनुसार बर्ताव करना समय का दुरुपयोग करना है । हमारे ऊपर यदि मालिकों को उपकार करना ही हो तो हमारा वेतन उन्हें बढ़ाना चाहिए । और उसे किस तरह खर्च करना चाहिए इसका निर्णय करना हमारा काम है । हमारे वेतन में वृद्धि करने में, मालिकों की उदार बुद्धि का संसार को पता चलेगा और हमारी अकृतज्ञता का ढिंढोरा पीटने का भी उन्हें फिर अवसर न मिलेगा ।"

नवां अध्याय ।

मजदूर ।

फ़रवरी सन् १९०६ की ६ तारीख को जर्मनी की सार्वभौम पार्लियामेंट में एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ने अपने देश के मजदूरों के संबंध में यह कहा था—"जर्मनी में व्यवसाय वाणिज्य का जितना विस्तार वर्तमान समय में हुआ है उतना विस्तार संसार के और किसी देश में, इतने समय में, नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण हमारे मजदूरों का ही कर्तृत्व है।" उसकी इस प्रशंसा से जर्मन मजदूर जितने योग्य प्रमाणित हुए हैं उससे कहीं अधिक उदारता उस राजनीतिज्ञ की प्रगट होती है जिसने ये उद्गार निकाले हैं। व्यवसाय वाणिज्य की उन्नति के लिये जो गुण चाहिएँ वे जर्मन मजदूरों में पाए जाते हैं और उन गुणों का अपने हाथों द्वारा व्यवहार करना, यह उनकी कर्तृत्व शक्ति के विकास का यथार्थ द्योतक है। सन् १८७६ में एक जर्मन प्रोफेसर ने कहा था कि हमारे देश का माल "सस्ता परंतु घटिया है" पर अब वह स्थिति बदल गई है। अन्य देशों की अपेक्षा अब भी जर्मन माल सस्ता है और घटिया माल भी जितना चाहो बाजार में तैयार मिलता है परंतु उसीके साथ बढ़िया माल भी बहुत तैयार होने लगा है; इसका बहुत कुछ श्रेय उपरोक्त राजनीतिज्ञ के कथनानुसार मजदूरों को ही है।

जर्मन मजदूरों के साथ अंगरेज मजदूरों की तुलना करके

देखने का भाव उत्पन्न होना एक सहज बात है। इस तुलना करने में यह अंतर साफ दृष्टिगोचर होने लगता है कि जर्मन मजदूरों में स्वतंत्रतापूर्वक काम करने की शक्ति नहीं है। पद पद पर उन्हें दूसेर की सहायता की आवश्यकता बनी रहती है। उनके स्वभाव में प्राय: यह भाव इस कारण उत्पन्न होता है कि उन्हें–उत्तर प्रदेश के जर्मनों को–अपना सारा जीवन दूसरों की देख रेख में ही व्यतीत करना पड़ता है। और इसीलिये किसी काम को स्वत: आरंभ करने का साहस उनमें नहीं पाया जाता। उन्हें इस बात का दृढ़ निश्चय अथवा पूरा विश्वास हो गया है कि दूसरे की सहायता बिना अपना जीवन नियमित रूप से नहीं व्यतीत हो सकता। जिन कारखानों में अंगरेज और जर्मन साथ साथ काम करते हैं, उन कारखानों के मालिकों को सदा यह कहते सुना जाता है कि जर्मन कारीगरों में स्वावलंबन और आत्मविश्वास बिलकुल नहीं है। स्वाभाविक ग्रहणशक्ति और अभ्यास अथवा अनुभव से उत्पन्न हुई ग्रहणशक्ति में जो अंतर है वही अंतर अंगरेज और जर्मन मजदूरों में है। दोनों ही अनुभव की पाठशाला में अपना अपना पाठ पढ़ते हैं परंतु उनकी कर्तृत्व शक्ति और योग्यता में अन्य साधनों का जो प्रभाव पड़ता है वही जर्मन मजदूरों में व्यावसायिक शिक्षा से पड़ता है। परंतु अंगरेज मजदूरों में उसका प्रभाव स्वाभाविक व्यवहारकुशलता और सारासार–विचार द्वारा पड़ता है। पुस्तकी ज्ञान अर्थात् मंत्र और व्यावहारिक ज्ञान अथवा तंत्र में जो भेद है वही भेद इन दोनों में है। मंत्र जपने से जितना

ज्ञान मिलना संभव है उतना जर्मन लोगों के पास है। परंतु मंत्र शास्त्र में ऊपर जाने में उन्हें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। और तंत्र की साधना करने के लिये यदि कोई अवसर आ जाय तो मंत्र को एक ओर रख देना चाहिए, यह बात भी उनके ध्यान में नहीं आती। अंगरेज मजदूर यदि पुस्तकी विद्या के ज्ञान का महत्व अधिक समझने लगें तो बहुत अच्छा हो। परंतु इस प्रकार का ज्ञान तिरस्करणीय है; यह बात और कोई नही, स्वत: उनके मालिक उन्हें सिखाते हैं। उनके द्वारा, वर्तमान में जितना काम होता है उतना काम दूसरे नहीं कर पाते अथवा अपने काम के सामने दूसरों के काम को वे चलने नहीं देते, यह कितने आश्चर्य की बात है। अंगरेज कारीगरों में व्यावहारिक ज्ञान पहले से ही भरपूर है। परंतु यदि उन्हें पुस्तकी ज्ञान की भी सहायता मिल जाय तो फिर सारे संसार में अपना कोई हाथ पकड़ सकेगा इसका भय करने का कोई कारण ही नहीं है।

जर्मन मजदूर परावलंबी होने पर भी मेहनती और कष्ट सहन करने में दृढ़ होते हैं। उनमें चालाकी नहीं है। परंतु अच्छे औजार, समान और समय का प्रबंध कर देने से उनके द्वारा अन्य लोगों की अपेक्षा अच्छा काम होता है। सोशियालिज्म के तत्त्वों का विकास और जनता के मन पर बैठी हुई उनकी छाप, यह देखकर जिनकी कल्पना शक्ति बहक गई है और चारों ओर पीछे हटने का सिद्धांत स्वीकार करना चाहिए, जिन को यह भासित होने लगा है, उन्हीं को जर्मन मजदूरों के चित्र बहुत बुरे

दिखाई पड़ते हैं। इस चित्र को देखकर बिना संकोच ऐसा भासित होने लगता है कि जर्मन मजदूरों में नैतिक समता का गुण बिलकुल नहीं है। व्यावहारिक तत्वों का उन्हें बिलकुल ज्ञान नहीं है और जिन पर उनका जीवन निर्वाह होता है वे कारखानें अथवा व्यवसाय वाणिज्य बिलकुल नष्ट कर देने चाहिएँ, यह उनका दृढ़ संकल्प है। परंतु यदि यह चित्र यथार्थ है तो जिस समय में सोशियालिज्म का विकास हुआ उसी समय में वहां सांपत्तिक विकास हुआ। अतएव इन दोनों बातों का एकीकरण कैसे किया जा सकता है? हर एक बड़े शहर में दिखाई देनेवाली उत्तम इमारतों के नमूने, औद्योगिक कलाकुशलता की प्रदर्शिनियों के नमूने, प्रत्येक बड़ी दूकान में विविध प्रकार का भरा हुआ सामान, इतना सबूत मिलने पर भी वहां के मजदूरों में अधिक कुशलता आगई है और छोटी से छोटी बात के लिये भी वे ध्यानपूर्वक विचार करते हैं, यह बात अनुभव में आए बिना न रहेगी। पूंजीवालों और मजदूरों के बीच का संबंध त्रासदायक नहीं, यह बात नहीं है; परंतु यह बात बिलकुल निश्चित है कि गत पचीस वर्षों में, औद्योगिक उन्नति की नींव दोंनों ने मिल कर डाली, जो बहुत दृढ़ और मजबूत है और उसपर जो इमारत अब बनाई जा रही है वह बहुत सुंदर है।

जर्मनी में व्यापार व्यवसाय के नगरों को देखने के लिये इंग्लैंड के जो लोग जाते हैं वे किसी एक राहगीर अथवा किसी कारखाने के एक मजदूर को देखकर उसके साफ सुथरे रहने के ढंग और बोल चाल की कुशलता को देखकर चकित

हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि हमारे मुल्क के मजदूरों में भी इस प्रकार की बात क्यों न दिखाई पड़े ? परंतु यह सोचते ही उन्हें यह भास होने लगता है कि जर्मन मजदूरों को उनके रहन सहन की अपेक्षा अधिक वेतन मिलता है और उनके रहने के मकान भी अच्छे हैं। परंतु इन दो कारणों से ही जर्मन मजदूरों में ऊपर कहे हुए गुण आ जाते हैं, यह कार्यकारण भाव उनको अथवा और किसी को ठीक ठीक नहीं जँचता। परंतु फिर यह परिणाम है किस बात का ? पाठशालाओं में मिलनेवाली अनिवार्य शिक्षा का क्या यह परिणाम है ? उद्योग धंधों में पैठनेवाले जर्मन लोगों को बिलकुल बचपन में ही क्या ऐसा नहीं सिखाया जाता कि प्रत्येक मनुष्य को अपना शरीर और कपड़े स्वच्छ रखने चाहिएँ तथा सबों से कुशलता और मर्यादापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। ये गुण विद्यार्थियों में उत्पन्न हों, इस विषय में उनकी पाठशालाओं में शिक्षक विशेष ध्यान देते हैं और यह सच है तो भी बहुत सी पाठशालाओं में जाने-वाले बालक नंगे पैर, मिट्टी और धूल में खेलते हुए जिस प्रकार अन्य शहरों में जाते हुए पाए जाते हैं उसी प्रकार जर्मनी के शहरों में भी पाए जाते हैं।

हां, यह सच है कि जर्मन मजदूरदल के बालक साधा-रण तौर पर मर्यादाशील होते हैं और उनमें उच्छृंखलता कम पाई जाती है। जर्मन बालिकाएँ भी विनयशील होती हैं और उनके व्यवहार में चमक दमक कम होती है। इसी श्रेणी के अंगरेज बालक बालिकाओं में ये गुण प्रायः कम

पाए जाते हैं। जर्मनी में एक पुरानी मसल है कि "बालकों पर नजर रक्खो परंतु उनकी बातें मत सुनो।" इस कहावत का पाठशालाओं में सदा प्रयोग किया जाता है, और संभव है कि उसी का यह परिणाम हो। कौमार और तारुण्य इन दोनों अवस्थाओं के बीच का जो समय जाता है, उसमें पाठशालाओं में प्राप्त की हुई हितकारी शिक्षा में से बहुत सी शिक्षा की बात भूल जाना संभव है, परंतु इस बीच में बालकों को मर्द बनाने की जर्मन कृति और इंग्लिश कृति में बड़ा अंतर है। प्राथमिक शिक्षा की पाठशालाओं में बालकों के मन पर जो संस्कार होते हैं वे बलवान हो कर भविष्यत् में बने रहें इसके लिये कौमार और यौवन के नाजुक समय में जर्मनी में दो प्रकार की शिक्षा दी जाती है, परंतु इंग्लैंड में इस प्रकार की चिंता कोई नहीं करता। पहली बात वहां पर यह है कि प्रारंभिक शिक्षा की पाठशालाओं से शिक्षा समाप्त होते ही विद्यार्थियों को कंटिन्युएशन पाठशालाओं में पढ़ने के लिये जाना पड़ता है, और दूसरी बात यह है कि उन्हें सैनिक सेवा के लिये जाना पड़ता है। प्राथमिक शिक्षा की पाठशाला से विद्यार्थी ऊँची पाठशाला में पढ़ने गया कि सहज में ही उसका मन बढ़ जाता है। उसके व्यवहार पर दूसरे की नजर रहती है और उसके बुरे मार्ग पर लगने का भय नहीं रहता। सैनिक शिक्षा मिलने से शरीर में व्यवस्थित रहने का गुण आता है। जर्मनी में हर एक हृष्ट पुष्ट और सुदृढ़ तरुण बालक को दो वर्ष तक सेना में रह कर सैनिक काम सीखना पड़ता है। परचक्र से

राष्ट्र का उद्धार करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को सैनिक शिक्षा देना आवश्यक और लाभदायक है या नहीं इस प्रश्न का विचार करना निरर्थक है। यहां पर तो केवल इतना ही देखना है कि सेना में रहकर मजदूरों में कुछ अच्छे गुण उत्पन्न होते हैं या नहीं और इस विषय में कोई मत-भेद होना संभव नहीं मालूम होता। सैनिक शिक्षा से मनुष्य के व्यवहार में कुछ उद्देश्य उत्पन्न हो जाता है और एक मनुष्य की मातहती में रह कर अन्य लोगों के साथ काम करने की आदत पड़ जाती है। सैनिक शिक्षा समाप्त करके जब कोई मनुष्य कारखाने में नौकरी करने जाता है तब वहां उसे नई तरह की यंत्र सामाग्री और काम करने की पद्धति देखने को मिलती है, परंतु उसे देख कर वह न डग-मगाता है और न घबड़ाता है। उसकी बुद्धि सुसंस्कृत होने से नवीन परस्थिति में भी जाकर वह मिल जाता है।

सैनिक शिक्षा से मजदूरों की नैतिक और शारीरिक उन्नति सैनिक विभाग द्वारा होती है और इसी कारण कारखानों में शारीरिक स्वच्छता रखने की व्यवस्था की गई है। हर एक कारखाने में मजदूरों के लिये स्नान-गृह और हाथ, पैर, मुंह धोने के लिये उचित व्यवस्था मालिकों को कर देनी चाहिए, ऐसा कानून है। इन स्नान-गृहों में गरम और ठंढा, जैसा पानी, जिसे चाहिए मिलता है। कई स्थानों पर तो "तुषार स्नान" की भी व्यवस्था की गई है। इसी कारण जर्मन कारखानों से बाहर आए हुए मजदूर कभी मैले कुचैले नहीं दिखाई पड़ते। कपड़ों के संबंध में भी उनकी यही

व्यवस्था है। कारखाने में काम करने के लिये आने पर, पहने हुए कपड़ों को उतार कर, वहां के कपड़ों को मजदूर पहन लेते हैं तब काम करते हैं और जाते समय कोई मजदूर कारखाने का काम के समय का पहना कपड़ा पहन कर बाहर नहीं जाने पाता। कारखाने से बाहर जाने के लिए अपने स्वच्छ कपड़े बदल कर ही बाहर जाने का नियम है। यदि कोई इस नियम का पालन न करे तो कारखाने के दरवाजे पर बैठा हुआ पहरेवाला कभी किसी मजदूर को बाहर नहीं जाने देगा। अब तक जो कुछ कहा गया है उस सबका कारण पाठशाला में प्राप्त हुई शिक्षा, बारकों और परेड पर की व्यवस्था, स्वच्छता और दृढ़ता के व्यवहार से मिली हुई उत्तेजना है। इन्हीं के सम्मेलन से जर्मन मजदूर अच्छा चलता है, अच्छा काम करता है और दिखाई भी अच्छा पड़ता है, इसमें आश्चर्य की बात ही कौनसी है? और यह अच्छापन समाज स्थिति के कारण ही नहीं वरन् शिक्षा द्वारा प्राप्त होता है यह बात ध्यान में रखने योग्य है।

व्यवस्थित रूप से रहने और मितव्ययिता के साथ काम करने में मजदूरों को उनकी स्त्रियों से बड़ी सहायता प्राप्त होती है। साधारण तौर पर इनकी स्त्रियां गृहिणी पद के सर्वथा योग्य हैं। पति के वेतन की सारी व्यवस्था वे ही करती हैं। थोड़े खर्च में उनके लिये खाने पीने के अच्छे पदार्थ तैयार कर देना उन्हीं का काम है। आमदनी का हिसाब किताब रखना, घर का किराया अथवा अन्य करों का देना, उनका काम है।

पति के खजाने की वे ही मालिकिन होती हैं। वे स्वतः परिश्रम करके उस खजाने में अपना कमाया हुआ धन भी लाकर मिला देती हैं। अपने यहां जिस प्रकार साधु संतों के वाक्यों को लोग कागजों पर लिख कर घर की दीवारों पर चिपका देते हैं उसी प्रकार की चाल जर्मनी में भी है। वहां भी साधु संतों के वचनों को मजदूर लोग अपने घरों की दीवारों पर अथवा टेवल क्लाथ पर या खिडकियों में लगाए हुए परदों पर जगह जगह चिपका देते हैं।

जर्मन मजदूरों को ऐश आराम पसंद है, परंतु वह नियमानुसार होनी चाहिए। आमोद प्रमोद के लिये वे इधर उधर बाहर कहीं नहीं जाते। सप्ताह में छः दिन—प्रति दिन नौ दस और कभी कभी ज्यादा से ज्यादा ग्यारह घंटे उन्हें काम करना पड़ता है। रविवार के सिवाय उन्हें कोई छुट्टी नहीं। इसलिये इस दिन वे अपना समय आमोद प्रमोद में व्यतीत करते हैं। उस दिन मजदूर श्रेणी के लोग दिखाई भी न पड़ेंगे। गर्मी के दिन हुए तो किसी बाग अथवा जंगल में, और अन्य ऋतुओं में उपहार-गृहों में उनके दर्शन हो सकते हैं। बड़े बड़े शहरों में इस प्रकार के सुभीते के स्थान बहुतायत से पाए जाते हैं। मध्यम स्थिति के लोग अपने बाल बच्चों को ले कर जिस प्रकार वन भोजन को जाते हैं उसी प्रकार ये लोग भी जाते हैं। सदा सर्वदा परिश्रम करते हुए जिसके हाथ में घट्ठे पड़ गए हैं, ऐसे मुख्य मालिक को अपने बाल बच्चों के साथ रविवार का दिन आनंद में बिताते देख कर किसको सुख न मालूम होता होगा? जर्मनी में आजकल

कुटुंबों के मनुष्यों में परस्पर बंधन ढीले होने के अनेक कारण उपस्थित हो गए हैं परंतु तो भी जर्मन मजदूरों का गृह सौख्य जो कुछ है वह अब भी बढ़ा हुआ है और उसका अनुभव वे अपने इच्छानुसार करते रहते हैं। जर्मन मजदूरों के आमोद प्रमोद के जो मार्ग हैं उनमें वे कुछ काम नहीं करते। शांतिपूर्वक बैठे रहना यह एक मार्ग है। शांति पूर्वक बैठे रहकर आमोद प्रमोद करने की कल्पना भी अंगरेज मजदूरों के चपल स्वभाव में नहीं है। कोई भी जर्मन मजदूर मुंह में चुरुट दबाए, शून्य आकाश की ओर दृष्टि लगाए घंटों एक बेंच अथवा घास पर बैठा हुआ, अपना समय व्यतीत कर सकता है परंतु यह काम अंगरेज मजदूरों से नहीं हो सकता। इस विषय में कुछ लोगों का यह कथन है कि जर्मन मजदूर स्वभाव ही से मुंह पर मक्खी बैठने तक चुपचाप रहते हैं। परंतु उनका यह कहना हमें यथार्थ नहीं दिखाई देता। इसके विपरीत हमारा मत तो यह है कि इस बात से तो जर्मन स्वभाव की सरलता, मर्यादित सुखापेक्षा और अल्प संतुष्टता आदि गुण संसार के सामने अच्छी तरह आते हैं।

बड़े बड़े शहरों में नियमित दिन को—बहुत करके रविवार को—दोपहर के समय बाजियां लगाई जाती हैं। परंतु मजदूर लोग इन बाजियों के झगड़े में नहीं पड़ते; इस कारण वे सट्टे अथवा जुए के मोहजाल में नहीं फँसते। परंतु उस देश में लॉटरी (भाग्यपरीक्षा) का काम बहुत अधिक होता है अतएव मजदूर लोग लाटरी के टिकट खरीद कर अपनी

भाग्य परीक्षा का मोह त्याग नहीं सकते, स्वयं मजदूरों की बात तो दूर रही, उनकी स्त्रियां भी अपने परिश्रम से कमाए हुए धन को लाटरी में लगाकर अपने भाग्य की परीक्षा करती हैं। सोशियालिस्ट संप्रदाय के समाचारपत्रों के कालम के कालम लाटरी के विज्ञापनों से भरे रहते हैं और ये ही पत्र बहुत करके मजदूरों को पढ़ने के लिये मिलते हैं। अतएव इसपर से यह अनुमान कर लेने में कोई भूल न होगी कि इन लॉटरियों के आश्रयदाता मजदूरदल के ही बहुत से लोग हैं।

मजदूर लोग अपने योग्यतानुसार सुखपूर्वक रह सकें और उनकी आरोग्यता के लिये फिक्र रक्खी जावे, इसलिये जर्मन सरकार ने कुछ निनम बना दिए हैं। इन नियमों में मुख्य स्थान बीमा कानून को दिया गया है। किसी मजदूर को अपघात होने पर अथवा बीमार पड़ने पर उसके अच्छा होने तक कानून के अनुसार घर अथवा औषधालय में उसकी सेवा शुश्रुषा और औषधोपचार होता है। इस काम के लिये उसे अपने पास से पैसा खर्च नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार बुढ़ापे में अथवा हाथ पैर से बकाम हो जाने पर पेंशन देने की व्यवस्था की गई है। हाथ पैर चलते हैं तब तक तो ठीक है; परंतु किसी अपघात के कापण मरने पर अथवा हाथ पैर टूट जाने पर,अपने पीछे अपने बाल बच्चों का क्या हाल होगा, उनका पालन पोषण करनेवाला कोई न रहने पर वे अन्न बिना भूखों मर जायँगे, ये विचार रात दिन मजदूरों को दुःख पहुँचाया करते हैं। परंतु उपरोक्त व्यवस्था होने के कारण वे इस

चिंता से सदा मुक्त रहते हैं और अपने पीछे अपने बाल बच्चों के भूखों मरने का उन्हें विशेष डर नहीं रहता। बीमा कानून की बाबत भी सोशियालिस्ट पत्रों में हाय तोबा मचा करता है परंतु यह चिल्लाहट छोटी छोटी बातों के लिये होती है। मूल तत्त्व के संबंध में कोई मतभेद नहीं है वरन् इस कानून के कारण मजदूरों में सरकार के प्रति कृतज्ञता पाई जाती है। अन्य कोई भी कानून यदि रद्द हो जाय तो उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं है परंतु यदि बीमा कानून में कोई हाथ लगावे तो फिर वे उसे कभी सहन करनेवाले नहीं हैं।

मजदूरों के ऊपर उपकार करने के लिये ही यह कानून बनाया गया है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। परंतु असल बात यह है कि इस कानून की सहायता से धन का बहुत सा बोझ मालिकों की अपेक्षा मजदूरों के ही सर पर लादा जाता है। इस बोझ को मजदूर लोग प्रसन्नतापूर्वक उठाने को तैयार रहते हैं, और जो कुछ चंदा वगैरह देना पड़ता है उसे खुशी से दे डालते हैं। ऐसी दशा में मालिकों की परोपकार बुद्धि कैसे व्यक्त होती है, यह बात कौन कह सकता है? अाघात के बीमा की रगड़ मालिकों के सर पर ही पड़ती है, यह एक अलग बात है। बीमारी की रकम में $\frac{2}{3}$ रकम मजदूरों को देनी पड़ती है, बाकी $\frac{1}{3}$ मालिक देता है। अशक्तता और बुढ़ापे की रकम में दोनों का आधा आधा भाग होता है। इसके अलावा प्रत्येक पेनशन के पीछे हर साल २ पौंड १० शिलिंग सरकारी खजाने से दिया जाता है। बीमा कानून के अनुसार मालिकों को धन

की अधिक चिंता रहती है यह स्पष्ट है। परंतु अपने ऊपर आए हुए संकट को ग्राहकों पर डाल देने की आसानी होने के कारण उन्हें सब मिलाकर कोई विशेष हानि अपनी नहीं प्रतीत होती। उलटा एक प्रकार से उन्हें लाभ ही रहता है। बीमा किए हुए मजदूरों की मांग का भी भय अधिक नहीं रहता और वे भी भविष्य की आशा पर मन लगाकर अच्छा काम करते हैं और इस प्रकार मालिकों को अप्रत्यक्ष भय से लाभ ही होता है।

मजदूरों की शारीरिक उन्नति के साथ साथ मानसिक उन्नति भी होनी चाहिए, यह तत्त्व उनके मुखियों के हृदय में अच्छे प्रकार भाभ्रित हो जाने के कारण बर्लिन, लिपजिग, हंबर्ग, डुसेल, डार्क और म्यूनिच सरीखे बड़े बड़े नगरों में मजदूरों को रात के समय शिक्षा देने के लिये पाठशालाएँ खोली गई हैं। ये पाठशालाएँ सर्वसाधारण की ओर से ही स्थापित की गई हैं। सरकार से उन्हें कुछ भी सहायता नहीं मिलती। पाठशालाओं में पढ़ाई का काम रात को नौ बजे से ग्यारह बजे तक होता है। शिक्षा देने का काम सोशियालिस्ट प्रोफेसरों ने अपने हाथ में ले रक्खा है। इनकी विषय प्रतिपादन की शैली दुराग्रह लिए हुए होती है। इस कारण विद्यार्थियों को सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता; तो भी, भिन्न भिन्न सामाजिक, राजनैतिक और औद्योगिक विषय व्याख्यान रूप से उनके कानों तक पहुँचते हैं, यह लाभ कुछ कम नहीं है। पार्लियामेंट के मजदूर सभासद, ट्रेड यूनियनों के मुखिया, समाचारपत्रों के संपादक, लेखक, स्कूल मास्टर ये सब

लोग अपने अपने सुभीते के अनुसार रात्रि-पाठशालाओं में शिक्षा के काम में सहायता पहुँचाते हैं। बर्लिन में मजदूरों के लिये जो व्याख्यान होते हैं उनमें बहुत सी स्त्रियां भी पहुँचती हैं। व्याख्यान होने की बात सुनते ही खाना पीना छोड़ कर अपने घर की स्त्रियों और बाल बच्चों को ले कर मजदूर वहाँ पहुँचते हैं। व्याख्यानों का विषय भी गहन होता है परंतु सरल भाषा में विषय विवेचन होने से लोग बड़ी उत्सुकता से उन्हें सुनते हैं।

मजदूरों के ज्ञान बढ़ाने के काम में सर्वसाधारण लोगों की जैसी सहानुभूति है वैसी सरकारी अधिकारियों की नहीं है। थोड़े दिन हुए जब सोशियालिस्ट पक्ष के कुछ प्रमुख गृहस्थों ने पोट्सडम में न्यायतत्व शास्त्र (Jurisprudence) पर व्याख्यान देने का निश्चय किया और इसी निश्चय के अनुसार समाचारपत्रों में विज्ञापन भी दिया गया। परंतु अधिकारियों ने एक पुराना कानून शोध निकाला और उस कानून के आधार पर व्याख्यान बंद कर दिया गया। इसी प्रकार चार्लोटनबर्ग में बालोद्यान शिक्षा-पद्धति से होनेवाले व्याख्यान को भी पुलिस अधिकारियों ने बंद कर दिया।

शिक्षा के समान ही अपने मनोरंजनार्थ भी मजदूर लोग खास योजना करने लगे हैं। बहुत से शहरों में उनके नाटक गृह, गायन वादन समाज, कुश्ती और खेल कूद के अखाड़े मौजूद हैं। बर्लिन में "फ्री पीपल्स स्टेज" (Free Peoples'-stage) नाम का एक नाटक घर है। यहाँ थोड़े दाम दे कर उच्च कोटि के नाटक देखने को मिलते हैं। जर्मनी में पुराने

और नए नाटककारों के नाटक सदा होते रहते हैं। राजनैतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों पर लिखे हुए नाटक लोगों को बहुत पसंद आते हैं। शेक्सपियर अथवा अन्य अंगरेजी अथवा विदेशी लेखकों के नाटक भी कभी कभी हो जाते हैं। गाने बजाने के जलसों और चित्रों की प्रदर्शिनियों को मजदूरों से बहुत कुछ आश्रय मिलता रहता है। तरुण पुरुष भी आनंद और आमोद प्रमोद में संलग्न रहते हैं। बालकों के लिये उन्होंने कुछ नहीं किया, यह आक्षेप भी उन पर नहीं लगाया जा सकता। कुश्ती के अखाड़ों में प्रति रविवार को बालकों के खेलने की व्यवस्था की गई है। मनोरंजन के कामों में भी अपना पक्ष और अपने पक्ष के लोगों के कल्याण के लिये पक्षपात सहित विचार देखे जाते हैं, यह सच है, परंतु उसकी सहायता से मनोरंजन द्वारा ज्ञान प्राप्ति के काम में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती।

गत दस पंद्रह वर्षों से शराब कम पीने का आंदोलन जर्मन मजदूरों ने शुरू कर रक्खा है। यह कार्य अपने और अपने दल के लोगों के हित के लिये आरंभ किया गया है। यह आंदोलन आरंभ हुए अभी बहुत वर्ष नहीं हुए, तो भी इसका प्रचार सारे देश भर में हो गया है। शराब कम पीने का अर्थ और महत्व हर एक देश में भिन्न भिन्न है। उदाहरणार्थ इंग्लैंड और जर्मनी को ही ले लीजिए। दोनों देश हर एक बात में एक दूसरे से भिन्न हैं और इस कारण इस प्रश्न का विचार दोनों देशों की स्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न रूप से किया जाना चाहिए। स्वयं जर्मनी में भी इस बाबत

कोई निश्चित सिद्धांत स्थिर नहीं हुआ है, क्योंकि उसके भिन्न भिन्न प्रांतों की आबोहवा भिन्न भिन्न प्रकार की है, खेती करने की जमीन भी भिन्न प्रकार की है और देश निवासियों की जातियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। यथार्थ जर्मन वही कहलाता है जो बियर (Beer) का पीनेवाला है। बाकी के लोग अन्य प्रकार की शराब पीते हैं। जर्मन और अंगरेजों में केवल इतना ही अंतर है कि जर्मन लोग समझते हैं कि 'बियर' मनुष्य के आवश्यक पेय पदार्थों में से एक है परंतु अंगरेज लोग यह समझते हैं कि यह आमोद प्रमोद और मनोरंजन करनेवाला पदार्थ है। इंग्लैंड में जिस तरह पर लोग चाय और काफी का व्यवहार करते हैं उसी प्रकार जर्मन लोग 'बियर' को काम में लाते हैं। "गरीब लोगों की बियर" (Poor mens' Beer) यह तो वहां एक कहावत है और इस कहावत में एक गूढ़ तत्त्व भरा है, ऐसा समझा जाता है। जो गूढ़ तत्त्व इस कहावत से निकाला जाता है वह यह है कि किसी मनुष्य का संसार बिना बियर के चल नहीं सकता और इसी कारण इस शाखा पर जर्मनी ने कर नहीं लगाया है। बियर शराब पर कर नहीं है, यह सुनकर अंगरेजों को बड़ा आश्चर्य मालूम होगा। परंतु ऊपर जो रहस्य बताया गया है, उसका भाव समझ लेने से उन्हें फिर इतना आश्चर्य नहीं मालूम होगा।

परंतु एक बात और है। जर्मन लोग बियर पीते अवश्य हैं परंतु इसकी वे ज्यादती नहीं होने देते। जर्मन की बियर शराब में 'अलकोहल' अर्थात् मादक पदार्थ का भाग सैकड़ा

पीछे २ होता है परंतु अंगरेजी बियर में यह सैकड़े पीछे ५ के हिसाब से पाया जाता है। जर्मन बियर की मादकता का भाग इतना कम होने पर भी पीनेवाले व्यक्ति को और उस समाज को जिसका वह व्यक्ति है, कितनी हानी पहुँचती है यह भावना मजदूर दल में दिनों दिन बढ़ती जा रही है। मित-पान करने का आंदोलन पहले पहल सोशियालिस्ट लोगों ने आरंभ किया। कुछ दिनों के बाद मजदूर दल के लोग भी इस आंदोलन में सम्मिलित हो गए और अब तो सारे देश में यह आंदोलन व्याप गया है। यह आंदोलन स्वयं जर्मन लोगों ने आरंभ किया और उसकी व्यापकता एक विशेष दल के लोगों तक है, यह बात ध्यान रखने योग्य है। इंग्लैंड में भी इस काम के लिये एक सोसाइटी है। उसके आश्रय में काम करनेवाले अनेक लोग हैं। परंतु जर्मनी में इस प्रकार का ठाट बाट बिलकुल दिखाई नहीं पड़ेगा। किसी अन्य ने आ कर कान में मंत्र के समान फूक दिया अथवा किसी उपदेशक ने आ कर उपदेशामृत पान कराया या किसी अपूर्व वक्ता ने उसके गुण दोष बताए, यह दशा वहां नहीं है। वहां पर मित-पान करने के काम में सभा करके भाषण करने, धर्मोपदेशक अथवा नीति शास्त्रवेत्ता या किसी समाज-सुधारक की आवश्यकता नहीं पड़ती। वहां तो श्रोता भी मजदूर और वक्ता भी मजदूर ही हैं। सारी व्यवस्था मजदूरों ने अपने हाथ में ही रक्खी है। शराब पीना बुरा है, उससे सामाजिक नीति भ्रष्ट होती है। शराब पीनेवाला मनुष्य, मनुष्यत्व

से गिर जाता है, इत्यादि नैतिक तत्व को ले कर वे वाद विवाद नहीं करते। शराब पीने से शारीरिक हानि होती है, धन का बिना कारण अपव्यय होता है और समाज को हानि पहुँचती है इसलिये वे इस बात पर जोर देते हैं कि शराब का व्यसन ही नष्ट हो जाय तो बहुत अच्छा। परंतु यदि यह होना संभव न हो तो मित-पान करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया जाना चाहिए और इससे प्रत्येक व्यक्ति और उसी के साथ सारे समाज का लाभ होना संभव है। इस प्रकार साम्पत्तिक लाभ बता कर यह आंदोलन उन्होंने आरंभ किया है; नैतिक प्रश्न का इस विषय में उन्होंने कोई संबंध नहीं रक्खा।

यह आंदोलन आरंभ होने से पहले विपद् का चारों ओर साम्राज्य था परंतु जब से यह आंदोलन आरंभ हुआ तबसे अब की स्थिति का कोइ मिलान करे तो उसे आकाश पाताल का अंतर दिखाई पड़ेगा। मित-पान का महत्व जाननेवाला एक भी पुरुष पंद्रह वर्ष पहले दिखाई नहीं पड़ता था, परंतु यदि आज देखा जाय तो चारों ओर भिन्न भिन्न समाजों में यह आंदोलन अपना प्रभाव डालता हुआ दिखाई पड़ेगा। ट्रेडयूनियनों के सभागृहों से तो मादक द्रव्यों को निकाल ही दिया गया है। बर्लिन के राज-कारीगर अव्वल दर्जे के शराबी होते हैं, यह बात पहले बहुत मशहूर थी परंतु यदि अब देखा जाय तो यह पाया जायगा कि काम पर जाते समय वे अपने साथ खालिस दूध की बोतल ले जाते हैं। परवाना मिली हुई दूकानों, उपहारगृहों, अथवा अन्य स्थानों में

शराब के बजाय चाय, काफी, दूध आदि इसी प्रकार के सात्विक पदार्थ पीने को दिए जाने की व्यवस्था की गई है। सन् १८९९ से १९०५ तक बियर शराब की कितनी खपत हुई इसका ब्योरा जो प्रकाशित हुआ है, उसे देखने से यह प्रतीत होता है कि शराब की खपत दिनों दिन कम होती जाती है।

भिन्न भिन्न प्रांतों की सरकारें और उन शहरों के अधिकारी लोग भी यह प्रयत्न करते रहते हैं कि मजदूर लोग बियर शराब पीना त्याग दें। बव्वेरिया प्रांत वीरों की जन्मभूमि कहा जाता है परंतु वहां की सरकार भी इस काम में मन लगा कर सहायता पहुँचाती है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। रेलवे, बंदरगाह; नहरें आदि बनाने का काम सरकार द्वारा होता है अतएव ऐसी जगहों पर शराब बेचने की दूकानें खोलने की सरकार कभी आज्ञा नहीं देती। ऐसी व्यवस्था की गई है कि कारखानों की जांच करनेवाले अधिकारी लोग कारखाने के मालिकों को शराब न पीने का महत्व अच्छी तरह से समझा दें। सरकारी वर्क शापों में बियर के जगह काफी, चाय, दूध अथवा खनिजोदक (Mineral waters) मिलने की व्यवस्था की गई है। बियर शराब बनानेवाली भट्टियों में, काम करनेवाले मजदूरों को, मुफ्त बियर पीने को दी जाय, ऐसी प्रथा थी परंतु अब यह प्रथा भी उठा दी गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि बियर के विरुद्ध जो चढ़ाई की गई थी उसमें यश और विजय प्राप्त होरही है।

मित-पान का आंदोलन, आरंभ से सोशियालिष्ट लोगों ने जारी किया यह ऊपर कहा जा चुका है। परंतु इस दल के सब

लोग आरंभ से अनुकूल न थे, वरन कुछ लोग तो इस आंदोलन के विरुद्ध थे परंतु इस आंदोलन के उत्पादकों ने इस ओर ध्यान न देकर समाचारपत्रों, मासिक पुस्तकों, सूचनापत्रों और व्याख्यानों द्वारा लोकमत जाग्रत करने का यत्न बड़े परिश्रम के साथ किया। उनके इस प्रयत्न का फल धीरे धीरे जनता के सामने आ रहा है और सोशियालिस्ट दल के मुखिया और प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोग भी इस आंदोलन में सम्मिलित हो रहे हैं। सन १९०७ में एमन नगर में इस दल के लोगों की जो कांग्रेस हुई थी, उसने इस आंदोलन को न जाने क्या आशीर्वाद चिरजीवत्व के लिये दिया कि तबसे मद्यपान-निषेध का विषय भी सोशियालिस्ट लोगों ने अपने उद्देश्यों में से एक उद्देश्य समझ लिया है। धनी लोगों के पंजे से मजदूरों को सदा के लिये छुड़ाने के उद्देश्य से जो अनेक उद्योग उन लोगों ने किए हैं, उन सबों में उस मद्यपान-निषेध के प्रयत्न को महत्व का स्थान दिया गया है।

इस विषय की जरा विस्तारपूर्वक विवेचना करने के दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि मजदूरी पर निर्वाह करनेवाले जितने लोग हैं उनका एक स्वतंत्र दल तैयार होना चाहिए, यह स्पष्ट ज्ञान उनमें उत्पन्न करना और सब लोग एकमत हो कर काम करने को तैयार हुए तो अन्य लोगों की सहायता की अपेक्षा न कर के "उद्धरेदात्मनात्मानं" के सिद्धांतानुसार स्वावलंबन का मार्ग ग्रहण कर के अपनी स्थिति सुधारना इस भाव को आगे रख कर मद्यपान-निषेध का प्रश्न मजदूरों ने अपने हाथ में लिया है, यह बात पाठकों को

ध्यान में रखनी चाहिए। दूसरा कारण यह है कि इस विषय को सांपत्तिक दृष्टि से देखने पर मजदूर दल के बहुत से लोगों की यह दृढ़ धारणा हो गई है कि मित-पान करने से उद्योग धंधो में अपने को अधिक यश प्राप्त होगा और समाज में मनुष्यता के नाते से हमारा अधिक मान होगा। शराब पीने के व्यसन को तिलांजलि देने के लिये जो ये लोग तैयार हुए हैं उनमें से बहुत से तो अपने मालिकों पर प्रेम दिखाने अथवा अपने काम को सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिये ही उद्यत हुए हैं। स्वार्थ और अपने दल के लोगों की साम्पत्तिक उन्नति के विचार से ही ये बातें उन्हें इस ओर ले गई हैं। परंतु इस कार्य में जितना अधिक यश प्राप्त होगा उतना ही अधिक अनायास कारखानेवालों को लाभ पहुँचेगा, क्योंकि शराब के व्यसन से मुक्त हो कर मजदूर लोग अधिक कार्यशील बनेंगे। परंतु व्यापार में जर्मनी की बराबरी करनेवाले राष्ट्र मद्यपान-निषेध का मूल तत्व क्या है, इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। वे तो केवल यह देख रहे हैं कि जर्मन व्यापार का भविष्यत् में क्या परिणाम होगा। परंतु भविष्यत् में क्या होगा इसकी चिंता निरर्थक है और उस विषय में अभी कोई निश्चयात्मक विधान करना बहुत बड़े साहस का काम होगा।

दसवाँ अध्याय।

सिंडिकेट अर्थात् कारखानेवालों का संघ।

बर्लिन प्रवासी आस्ट्रिया के कांसल (वकील) ने सन् १९०६ में अपनी सरकार को एक पत्र लिखा था, जिसका भाव यह था—"जर्मनी की सांपत्तिक स्थिति वर्तमान समय में मुट्ठी भर अधिक से अधिक पचास मनुष्यों की इच्छा पर अवलंबित है, वैसी इससे पहले कभी न थी। औद्योगिक विकास के लिये किसी प्रकार का प्रतिबंध करना उचित नहीं है, वह जिस प्रकार से होता है उसे उसी प्रकार से होने देना चाहिए। यह सिद्धांत जितना सन १९०६ में पीछे छोड़ दिया गया है इसके पहले वह कभी इतना पीछे नहीं रहा। बड़ी बड़ी बंकें, औद्योगिक कारखाने, व्यापार के संघ, इन सबों में मुख्य मुख्य मनुष्यों के इच्छानुसार माल का तैयार करना, विदेश में भेज कर विक्री करना, माल की कीमत स्थिर करना, माल को उधार देने का प्रबंध करना, नई पूंजी इकट्ठी करना, मजदूरों का वेतन और व्यापार की दर का निश्चित करना, आदि बातें अब प्रायः तै भी हो गई हैं। जिन उद्योग धंधों में व्यापारियों ने संघ बना लिए हैं, उनमें किफायत अधिक होती है। इसी प्रकार जर्मनी के औद्योगिक सुधार के साथ जिन लोगों की थैलियाँ भरी हैं, यदि ऐसे कोई लोग हैं तो वे संघ में संमिलित हुए व्यापारी हैं।"

कारखानों के संघ को जर्मनी में सिंडिकेट कहते हैं। इन सिंडिकेटों को स्थापित करने का जो उद्योग वर्तमान युग में वहाँ हो रहा है, उस ओर विदेशी लोगों का ध्यान किस प्रकार आकर्षित हुआ है, यह बात ऊपर दिए हुए अवतरण से स्पष्ट समझ में आ जाती है। इन सिंडिकेटों का जैसा उपयोग व्यवसाय वाणिज्य के प्रसार में होता है वैसा ही पूँजी एकत्रित करने के विषय में भी होता है। यह बात आस्ट्रियन कांसल के लेख से ध्वनित होती है और यह बिलकुल ठीक है। हर एक प्रांत में जितने बैंक हैं वे सब बर्लिन की मुख्य बेंक में सम्मिलित हैं। बर्लिन की इस बैंक ने पुनः आपस में संधि कर रक्खी है। इस कारण व्यापार के लिय धन की जो गड़बड़ी या धूमधाम होती है वह केवल पांच छ बैंकों द्वारा होती है। इन बैंकों में से तीन बैंकों की पूँजी, दो दो करोड़ प्रति बैंक पौंड है। समुद्र द्वारा विदेशी व्यापार के लिय जितने धन की आवकता होती है वह सब इन्हीं बैंकों द्वारा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न प्रकार के वाणिज्य व्यवसाय के लिये सिंडिकेट स्थापित करने का जो क्रम सारे देश में शीघ्रता से जारी है उसमें भी जितना धन लगाने की आवश्यकता होती है, ये बैंकें उतना देने को तैयार रहती हैं।

औद्योगिक संघ बनाने का प्राबल्य जर्मनी में अभी हाल में ही आरंभ हुआ हो, यह बात नहीं है। एक इतिहास लेखक ने लिखा है कि सन् १८३६ में भी एक सिंडिकेट वहां थी। इस साल से लेकर सन् १९०६ तक अर्थात् सत्तर वर्ष के भीतर भीतर वहाँ करीब करीब चार सौ सिंडिकेट स्थापित

हो गए। इस पर से विदेश से रवाना होनेवाले माल का सारा काम कहीं पूर्ण रीति से, कहीं अंशतः, सिंडिकेट के स्वाधीन हो गया है, यह कहना अतिशयोक्ति न होगा और साथ ही यह बात तो निश्चय के साथ कही जा सकती है कि भिन्न भिन्न प्रकार के व्यवसाय वाणिज्य को एक केंद्र में लाने का जो प्रयत्न चल रहा है उससे विशेष महत्व का माल उत्पन्न करनेवाले कारखानों को भी बहुत ही कुछ यश प्राप्त हो रहा है।

संरक्षण-कानून पास होने से, सिंडिकेट स्थापित करनेवालों को कितनी उत्तेजना मिली, इस विषय में स्वयं जर्मन लोगों में मतभेद है। यह कानून सन् १८७९ में जारी हुआ। परंतु इससे भी पहले सिंडिकेट मौजूद थे। इस पर से यह नहीं कह सकते कि आनेवाले माल पर कर लगाने से ही इसकी उन्नति हुई है। संरक्षण के अतिरिक्त औद्योगिक-संघों के परिपोषण की और भी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं तथा उन उन अवस्थाओं में संघ का कार्य उत्तमतापूर्वक चलता है। उदाहरणार्थ—(अ) कच्चा माल जितना उत्पन्न होना चाहिए उतना न होने से अथवा उसे उत्पन्न करनेवाले मनुष्यों की संख्या कम होने से उसका व्यापार थोड़े लोगों के इच्छानुसार चलना, (ब) कारखानों में अधपक्का अथवा पक्का तैयार होनेवाले माल का व्यापार स्वाभाविक रीति से मुट्ठी भर आदमियों के हाथ में रहना, (क) बाज़ार में भेजजानेवाला माल किस प्रकार का होना चाहिए, वह कितना तैयार किया जाना चाहिए, और विदेश में उसे किस प्रकार से भेजना चाहिए, इत्यादि

बातों के लिये स्थानिक संघ बनानेवालों की दशा का अनुकूल होना; और इसी प्रकार के और भी कुछ उदाहरण देने योग्य हैं। जिन उद्योग-धंधों के लिये आज कल सिंडिकेट स्थापित हुए हैं उनकी उन्नति सिंडिकेट द्वारा ही हुई है।

सन् १८७९ में संरक्षण कानून पास हुआ, यह ऊपर बताया जा चुका है। उस कानून का अमल दरामद होते ही सिंडिकेटों की संख्या बढ़ने लगी, यह बात ध्यान में रखने योग्य है। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है कि संरक्षण, सिंडिकेटों की उत्पत्ति का आदि कारण न भी हो तो भी इनकी स्थापना में उससे सहायता अवश्य मिली। यदि वह कानून पास न हुआ होता तो बहुत कुछ सम्भव था कि सिंडिकेटों का उतना प्रसार न होता जितना कि अब है। हमारा यह अनुमान गलत नहीं है, इसके लिये जर्मन लेखकों के लेखों के बहुत से अवतरण दिए जा सकते हैं, परंतु विस्तार-भय से यहां पर उनका देना उचित नहीं जान पड़ता।

परंतु यदि यह भी मान लिया जाय कि संरक्षण सिंडिकेटों का प्रत्यक्ष कारण नहीं है केवल साथी अथवा सहचर है तो भी यह अनुमान कर लेना ठीक न होगा कि यदि संरक्षण कानून कुछ ढीला कर दिया जाय तो औद्योगिक संघ निर्माण होने की व्यापारिक प्रवृत्ति कम हो जायगी। प्रत्यक्ष उदाहरण देकर यह सिद्ध करना सरल होगा कि कुछ व्यवसायों में सिंडिकेटों का विदेशी व्यापार की चढ़ा उपरी पर रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतएव उन व्यवसायों के लिये 'संरक्षण कर' का लगाना अथवा न लगाना बराबर है।

देश का मूल धन इधर उधर फैला न रह कर मर्यादित दशा में रहे और इसी प्रकार वाणिज्य-व्यवसाय सूक्ष्म दृष्टि रहने वाले लोगों की देख रेख में रहे तो अच्छा होगा। परंतु इसके विपरीत कितने ही सोशियालिस्ट लेखकों के मतानुसार इस प्रवृत्ति के अधिक ऊंचे जाने का मुख्य कारण धनाढ्य लोगों की द्रव्य-तृष्णा है। परंतु उनका यह कथन युक्ति-संगत दिखाई नहीं पड़ता। व्यवसाय-वाणिज्य को व्यवस्थित स्वरूप देने का एक बार निश्चय हो जाने से वह किस मार्ग अथवा उपाय से सिद्ध किया जा सकता है, इसका विचार फिर सहज में ही करने की ओर ध्यान जाता है, और उन विचारों की प्रगल्भता आने से उनका पर्यवसान सिंडिकेट सरीखे संघों द्वारा होना एक सहज बात है।

सिंडिकेट तत्व के प्रतिकूल बहुत से लोगों का यह आक्षेप है कि यह संस्था आवश्यकता से अधिक आगे बढ़ गई है और उसका परिणाम यह हुआ है कि थोड़े समय में ही जर्मन राष्ट्र एक बहुत बड़ा "वर्कशाप" बन गया है। और इस कारण देश की कृषि और कलाकौशल आदि रसातल को चले गए। व्यवसाय-वाणिज्य के अधिक प्रचार से खेती का काम करने के लिये मजदूर नहीं मिलते और यह कठिनाई सदा के लिये आ उपस्थित हुई है। सम्पत्युत्पादन के काम में एकदम बहुत बड़ा फेर फार हो जाने से, किसानों पर यह कठिनाई अनपेक्षित रूप से आकर उपस्थित हो गई है और वह किस प्रकार दूर की जा सकती है, इसका उपाय सुझाई नहीं पड़ता।

कोयला और लोहा निकालने के कारखाने के मालिकों ने जो संघ स्थापित किए हैं, वे अन्य प्रकार के संघों की अपेक्षा अधिक पूर्णत्व को प्राप्त हुए हैं। खानों से इतना ही माल निकालना चाहिए और कारखानों में इतना ही माल तैयार होना चाहिए, अधिक तैयार न होना चाहिए—इन संघों में यह व्यवस्था अब भी अबाधित रूप से चल रही है। "ब्रिनिश-वेस्टफेलियन सिंडिकेट" सब से अधिक प्रभावशाली है। इस संघ की स्थापना, एसन नगर में, सन् १८८३ में हुई थी। इसी प्रकार के संघ अन्य कारखानों के मालिकों ने भी बनाए हैं। बाजारों में कितना माल भेजा जाय, जिस प्रकार यह बात संघ करते हैं उसी प्रकार बाजार में माल किस भाव बेचा जाय, इसका निश्चय भी एक दूसरे संघ द्वारा होता है; और ये दोनों प्रकार के संघ एकचित्त होकर काम करते हैं। इस प्रकार माल तैयार करने और बेचने की व्यवस्था के प्रतिकूल चार आक्षेप किए जाते हैं। वे आक्षेप ये हैं—

(१) माल पैदा करने और बेचने में जो खर्च होता था वह कम हो, और पहले इस विषय में जो उपरा-चढ़ी होने से हानि होती थी वह न हो, परंतु इतने से ही ये सिंडिकेट संतुष्ट न रहकर माल का मूल्य मर्यादा से अधिक बढ़ा देने के काम में भी इन संघों का उपयोग करते हैं।

(२) कच्चा और कारखानों में तैयार हुआ अधपक्का माल विदेशी व्यापारियों को जिस मूल्य पर दिया जाता है उससे अधिक मूल्य लेकर देशी व्यापारियों को दिया जाता है। इस कारण कारखानों में अधपक्का तैयार हुआ

माल खरीद कर पक्का तैयार करनेवाले कारखानों को और देश के ग्राहकों को बहुत बड़ी हानि होती है।

(३) कुछ व्यवसायों में यह भी होता है कि देश की आवश्यकतानुसार माल तैयार न करके उसे मनमाने दामों पर बेचा जाता है और जितना चाहते हैं भाव बढ़ा देते हैं और उसी प्रकार के विदेश से आनेवाले माल पर 'संरक्षण कर' लगा रहने से उसके आने का और अपने साथ मुकाबला करने का उन्हें बिलकुल भय नहीं रहता।

(४) फुटकर व्यापार करनेवालों और दलाल लोगों को यह आपत्ति है कि व्यापार में पहले जो हमें स्वतंत्रता थी, वह अब नहीं रही। पहले के समान व्यापार में जहां हमें काम मिलता था वहां अब वे सिंडिकेट बीच में पड़ कर हमें अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होने देते।

अब यदि दोनों पक्ष के सिद्धांतों का मुकाबला किया जाय तो यह बात प्रत्यक्ष हो जायगी कि दूसरों पर अवलंबित रहने वाले कारखानेवालों और व्यक्तिशः व्यापारियों का उपरोक्त कथन बिलकुल ठीक है, यह बात स्पष्ट ध्यान में आए बिना न रहेगी। सिंडिकेटों की स्थापना होने से इन लोगों को हानि पहुँची और उन्हें कष्ट हो रहा है, यह बात स्वतःसिद्ध है। इसके लिये और किसी विशेष प्रमाण के देने की आवश्यकता नहीं है। कठिनता इतनी है कि प्रत्येक हानि के बाबत सिंडिकेट को कितना जिम्मेदार समझा जाय और उसपर कितना दोष आरोपित किया जाय, यह विशेष सूक्ष्म रीति से कहते नहीं बनता। "ह्रीनिश–वेस्ट फालियन कोल सिंडि-

केट'' की स्थापना हुए पश्चात् और विशेषतः उस संस्था के अपने व्यवहार का खास उद्देश्य स्थित कर लेने के पश्चात् कोयले का भाव बढ़ गया है, इसमें संदेह नहीं है। सन् १९०७ में कोयले का भाव बेहद बढ़ गया। उत्तर-जर्मनी की दशा तो इतनी शोचनीय हो गई थी कि कितने ही व्यवसाय कोयले के अभाव से नष्ट प्राय हो गए थे। मिल के काम के लिये लोगों को कोयला मिलना प्रायः बंद सा होगया था। जब यहां तक शोचनीय दशा पहुँच गई तब "राइस्टाक" और "प्रशियन् डाएट" इन दोनों सभाओं में एक ही समय "कोल सिंडिकेट" पर गालियों की बौछार पड़ने लगी। इस समय तो उन्होंने अपना स्वर जरा धीमा कर दिया परंतु आगामी वर्ष के अंत में जब व्यावसायिक नई लहर आई तब कोयले का दाम पहले की अपेक्षा अधिक चढ़ा दिया। यह तो कोयले का उदाहरण है। परंतु इसी प्रकार के और अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध करके बताया जा सकता है कि सिंडिकेट अपनी संघशक्ति के बल पर जान बूझ कर भी भिन्न भिन्न माल की कीमत मर्यादा से भी बहुत अधिक बढ़ा देने में समर्थ हैं।

माल का मूल्य अपने इच्छानुसार बढ़ाने की बात सिंडिकेट स्वयं स्वीकार करते हैं। परंतु इस बात का समर्थन वे किस प्रकार करते हैं, इसका उल्लेख हर-कालवर नामक एक लेखक ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार किया है—"सिंडिकेट वालों ने मूल्य निश्चय करने के संबंध में अपना उद्देश्य कई बार बदला है और आगे भी वे बदलते रहेंगे इसमें शंका नहीं

है। संरक्षण कर के भरोसे पर बाजार में जिस वस्तु का भाव कम ज्यादा होने का कुछ भय नहीं है उन वस्तुओं का व्यापार भी सिंडिकेट के हाथ में जाते ही उनका भी मूल्य मनमाना बढ़ाने की उनमें इच्छा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहेगी। परंतु बाजार में आनेवाले माल का मूल्य पहले की अपेक्षा बढ़ता जा रहा है अथवा नहीं, इस एक बात की ओर भी ध्यान दे कर सिंडिकेट के लोगों के काम का विचार करने से काम नहीं चलता। यह मूल्य चारों ओर समान हो कर स्थिर है अथवा नहीं, इसका भी विचार किया जाना चाहिए और फिर उनके काम की बाबत अनुकूल अथवा प्रतिकूल सम्मिति देनी चाहिए। सिंडिकेटों के अस्तित्व में आने से पहले व्यापार की स्थिति और बाजार में ऊपरा-चढ़ी के अनुसार मूल्य कम ज्यादा होता रहता था। माँग अधिक होने पर कीमत अपने आप एकदम चढ़ जाती थी और फिर कुछ देर के लिये माँग कम हो जाने से बाजार भाव उतर जाता था। इस कारण पूँजी-वालों और उन्हीं के साथ काम करनेवाले मजदूरों को भी हानि उठानी पड़ती थी। परंतु जिस माल का पैदा करना सिंडिकेट के हाथों में है उस माल के भाव के एकदम कम अथवा ज्यादा होने का भय बिलकुल नहीं रहता। व्यापार तेज होने से कीमत चढ़ जाती है परंतु वह धीरे धीरे विचार-पूर्वक चढ़ने पाती है। इसी प्रकार व्यापार मंदा होने से कीमत उतर जाती है परंतु वह एकदम न उतर कर धीरे धीरे कम होती है। सिंडिकेट के मूल्य स्थिर करने का काम अपने हाथ में लेने से पहले मूल्य के विषय में जो गड़बड़ होती थी

वह दूर हो गई है। इसी प्रकार कौन सा माल कितना तैयार करना, यह बात वे पहले ही निश्चित कर लेते हैं। इस कारण बाजार में जा कर माल पड़ा नहीं रहता और न फिर मिट्टी मोल उसे बेचना ही पड़ता है। सिंडिकेटों से यह लाभ अवश्य बहुत बड़ा है। पहले समय में कारखानेवालों का बाजार के चढ़ाव उतार पर ही नफा नुकसान का सारा दारोमदार था परंतु सिंडिकेटवालों के अधिकार में रहनेवाले कारखानेवालों की पहले की सी दशा अब नहीं रही है।"

यहां तक तो, पहले आक्षेप के संबंध में दोनों पक्षवालों का विचार किया गया। देशी व्यापारियों की अपेक्षा विदेशी व्यापारियों को विशेष सहूलियत से माल दिया जाता है, यह सिंडिकेटों के विरुद्ध दूसरा आक्षेप है। इस प्रश्न अथवा इसी प्रकार के और कई एक प्रश्नों पर विचार करने के लिये सरकार ने एक कमीशन नियत किया था। उस कमीशन के सन्मुख इस आक्षेप के समर्थनार्थ जो प्रमाण उपस्थित किए गए थे, उनको देखने से कारखानेवालों का कहना बिलकुल सच है, इसका पूरा पूरा विश्वास हो जाता है। भिन्न भिन्न गवाहों ने अपनी अपनी गवाहियों में मूल्य के अंतर संबंधी जो अंक दिए हैं उन्हें देखने से सिंडिकेटवालों को भी सचाई के विषय में शंका करने की बिलकुल गुंजाइश नहीं रहती। ये अंक बाजार में प्रत्यक्ष बिक्री के हैं। व्यक्तिशः विदेशी व्यापारियों को इन लोगों से क्या सहूलियत मिलती है यह बात प्रमाण सहित सिद्ध कर के बताना अति कठिन होने से यह गुप्त रहस्य संसार के सामने नहीं आता। परंतु यदि यह

रहस्य उद्घाटन हो जाता तो संसार में कितनी ही नई आश्चर्य-जनक बातें अपने आप ही सामने आ जातीं। सिंडिकेट के लोग अपने कच्चे माल को विदेशी व्यापारियों के हाथ कम मूल्य पर बेचते हैं और इस कारण विदेश से उनके माल की माँग अधिक बढ़ गई है और इससे उनको लाभ भी अधिक होता है, यह भी सच है, परंतु उनके इस कार्य से देशी कारखानों को हानि पहुँचती है इसका अर्थ क्या है ? कच्चे माल के लिये उन्हें अधिक दाम देने पड़ते हैं, इस कारण उन्हें माल भी महँगा पड़ता है और इसी कारण से उन्हें विदेश में जितने ग्राहक मिलने चाहिएँ नहीं मिलते। यदि इतना ही होकर रह जाता तो कुछ हर्ज न था परंतु उनके कारखाने के बने हुए माल की बराबरी का माल विदेश से उनके देश में आता है और उसे विदेशी व्यापारी कम दामों पर बेच सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जर्मनी में तैयार हुआ कच्चा माल विदेश जाता है और वहां के कारखानों में उसका रूपांतर होकर फिर वह पुनः जर्मनी में वापस आता है जिससे वहां के कारखाने-वालों की कमर टूट जाती है। अर्थात् अपने पैर पर आप कुल्हाड़ी मारने के समान सिंडिकेटों का यह उद्योग है, यह कहने में भी कुछ हर्ज नहीं है। "कलोन गजट" में इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण प्रकाशित हुआ था। वह लिखता है कि सिंडिकेट की स्थापना होने से पहले, पक्का माल तैयार करनेवाले कारखाने, बहुत वर्षों तक करीब करीब दस हजार टन कीलें हालैंड को भेजते थे। इसके सिवाय, चार हजार टन कच्चा माल जर्मनी से हालैंड के व्यापारी ले जाकर अपने

कारखानों में कीलें तैयार करते थे। परंतु सिंडिकेट के हाथ में व्यापार जाने से किफायत के साथ माल तैयार होने लगा। "रोल्ड" तार द्वारा यंत्रों की सहायता से गोल तार बनाने के कारखाने जारी होने लगे। इन कारखानों में इतना माल तैयार होने लगा कि उसे किसी न किसी प्रकार से निकालने का प्रबंध करना ही पड़ा। देश की मांग पूरी करके यह माल हालैंड भेजा जाकर सस्ते दामों में बेचा जाने लगा। इसका परिणाम यह निकला कि हालैंड के व्यापारियों ने जर्मन माल पक्का मँगाना तो बिलकुल छोड़ दिया और उलटा पक्का माल वहां से जर्मनी में आकर बिकने लगा और यह माल जर्मन माल की अपेक्षा २५ सैकड़ा कम दाम पर बेचा जा सका। इस कमी बेशी के कारण जर्मन व्यापारियों को अपने अपने कीलों के कारखानों को मजबूर होकर बंद करना पड़ा और उससे उन्हें अपार हानि सहन करनी पड़ी। इस विषय में मारगेनराथ नामक एक लेखक ने लिखा है—"यदि आप सारे चेंबर आफ कामर्स की रिपोर्टों को निकाल कर पढ़ें तो इस संबंध में उनके विचार प्रतिकूल ही पाइएगा। सिंडिकेट के लोगों के इस व्यापारी उद्देश्य के कारण कितने ही व्यवसाय जर्मनी में नष्ट हो गए और विदेश में जाकर वे उन्नत दशा को प्राप्त हुए। इसी कारण राइन का जहाज बनाने का व्यवसाय नष्ट हो कर हालैंड में जाकर उन्नति को प्राप्त हुआ, क्योंकि इस व्यवसाय के काम में आनेवाला सामान जर्मन व्यापारियों को जिस दाम पर मिलता था उसकी अपेक्षा कम दामों पर हालैंड को मिलने

लगा। जर्मन फौलाद कम दामों पर मिलने के कारण, हालैंड में लोहे और फौलाद के अनेक कारखाने बड़ी उत्तमतापूर्वक चल रहे हैं। बेलजियम में भी जर्मनी के कच्चे माल के भरोसे पर लोहे के तार तैयार करने के बहुत से कारखाने बन गए हैं।"

इसका उत्तर डा० लीफमन इस प्रकार देते हैं—"कच्चा और कारखानों में बना अधपका माल सिंडिकेटवालों के कारण विदेश के लिये सस्ता रवाना होता है परंतु इस प्रकार से जर्मनी का विदेशी व्यापार बढ़ता है। जर्मन कारखानों में तैयार हुआ पक्का माल विदेशी पक्के माल के मुकाबले में ठहर नहीं सकता इसका कारण यह नहीं है कि कच्चा माल बहुतायत से विदेश में जाता है, इसका कारण यह है कि उस माल के लिये विदेशी व्यापारियों को अधिक मूल्य देना पड़ता है,।" परंतु यह बात तो बिलकुल साफ है कि इस प्रकार अधिक दाम देने के कारण देशी कारखानों को दोहरी हानि उठानी पड़ती है। पहली हानि तो यह है कि माल तैयार करने में ही अधिक खर्च करना पड़ता है। दूसरी हानि यह है कि विदेशी व्यापारियों को बाजार में ऊपरा चढ़ी करने की उत्तेजना मिलती है। विदेशी ग्राहकों को अधिक सहूलियत देने से पक्का माल तैयार करनेवाले देशी कारखानों को धक्का लगता है। यह बात सिंडिकेटवाले भी स्वीकार करते हैं और देशी पक्का माल विदेश जाने पर कच्चे माल का मूल्य अधिक प्राप्त होने से जो हानि होती है, उस हानि को पूरा करने के लिये, उस माल पर "बौंटी" अर्थात् हानि का बदला देते हैं।

परंतु यह बदला उस समय देते हैं जब व्यापार बिलकुल गिर जाता है, हमेशा देने का कोई नियम नहीं है और यह बदले की रकम इतनी कम होती है कि उसके द्वारा पहली ही हानि की पूर्त्ति होना कभी संभव नहीं है।

सिंडिकेट के विरुद्ध तीसरे आक्षेप का विचार करने पर यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि सिंडिकेटवालों ने जिन व्यवसायों को हाथ में लिया है उनका बाजार पहले की अपेक्षा अब अधिक अच्छा है। वे जो माल तैयार करते हैं उसमें से कुछ माल तो विदेश से आना कम हो गया है। परंतु इस विषय में भी एक बात विचारणीय है और वह यह है कि, यह दशा जो प्राप्त हुई है वह सिंडिकेट स्थापित होने के कारण हुई है अथवा संरक्षण-कर लगाने के बाद से हुई है, क्योंकि इन दोनों कारणों से यह परिणाम होना संभव है। परंतु इसमें भी कुछ बात अपवाद स्वरूप हैं। जैसे जस्ते की चद्दर पर संरक्षण-कर लगा हुआ है और सिंडिकेट ने भी उसका मूल्य बहुत कुछ बढ़ा दिया है। यह होने पर भी फी सैकड़ा ३० के हिसाब से जस्ते की चद्दरें इग्लैंड से जर्मनी जाती हैं और उन्हें लाभ भी अच्छा होता है, क्योंकि जर्मनी में सिंडिकेट की कृपा से इस माल का दाम अच्छा आ जाता है। संरक्षण-कर और अन्य प्रकार के खर्चों को निकाल कर उन्हें अच्छी रकम नफ़ा के तौर पर बच रहती है। ऊपर जिस कमीशन का उल्लेख किया गया है उस कमीशन के सामने एक गवाह ने इस विषय में अपने विचार जो प्रगट किए थे वे ये हैं—"मांग की अपेक्षा माल को इकट्ठा करके रखने के

अलावा इग्लैंड में जस्ते की चद्दरें जिस भाव में पड़ती हैं, उस की अपेक्षा पचास फी सदी अधिक दाम ग्राहकों से यहाँ मांगे जाते हैं और इतना मूल्य देकर भी ग्राहकों की मांग के अनुसार माल तैयार करके नहीं दिया जाता है।"

अब चौथे आक्षेप के विषय में विचार करना बाकी रह गया। परंतु यदि उसका विचार अति संक्षेप से भी किया जाय तो भी ठीक होगा, क्योंकि फुटकर व्यापार करनेवाले व्यापारियों और फुटकर माल लेनेवाले ग्राहकों की सिंडिकेटवालों के पास बिलकुल दाळ नहीं गलती। इकट्ठा माल खरीदनेवाले जो बड़े बड़े कारखाने हैं, उन्हीं के साथ इनका कारोबार होता है और इसी कारण दलालों के मध्यस्थ होने का भी कुछ काम नहीं पड़ता।

यहां तक तो उन चार बड़े-बड़े आक्षेपों का जो ऊपर बताए गए हैं संक्षेप में उत्तर दिया गया। परंतु पूँजीवालों और मजदूरों के हित का भी इस विषय से बहुत कुछ संबंध है। अतएव उस दृष्टि से भी इन व्यापारी संघों का विचार करना बहुत जरूरी है। इस विषय का विचार करने पर यह बात स्वीकार कर लेनी पड़ेगी कि (१) कमीशन के सामने आई हुई कुछ बातों को छोड़ कर सिंडिकेटों का व्यवसाय-वाणिज्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा है और (२) सिंडिकेटों द्वारा ऐसी कोई बात नहीं हुई है जिससे मजदूरों के लाभ को धक्का पहुँचे। संघ बनाने से किस प्रकार लाभ होगा, इस विषय में पूंजीवाले लोग जो कारण बताते हैं वे सरळ और धनी लोगों के स्वीकार करने योग्य हैं। हानि लाभ के विचार से माल पैदा

करनेवाले लोगों को आपस में कमी बेशी करके एक दूसरे को हानि पहुँचाना, उचित अथवा आपस की कमी बेशी को रोक कर सबों का एक विचार होकर काम करना और जो लाभ हो उसे नियमित रूप से आपस में बाँट लेना, यह उचित है। आपस में एक मत होकर काम करने से जो कमी बेशी होने से हानि होती थी वह अपने आप बहुत कुछ दूर हो गई है। व्यापार एक प्रकार का ईश्वरीय खेल है। इस खेल में जय किसे मिलेगी और पराजय किस की होगी, यह बात बिलकुल अनिश्चित रहती है। परंतु इस दशा को बदलने के लिये संघ-शक्ति को व्यापार का शास्त्रीय स्वरूप देकर उस अनिश्चितता के दूर करने का प्रयत्न किया जाता है; इतना ही नहीं, इस प्रकार से व्यापार करने में बहुत कुछ परिश्रम भी बच जाता है और माल का भी बहुत नुकसान नहीं होने पाता और व्यापार में लगाए हुए मूलधन पर क़रीब क़रीब सबों को समान परंतु सम्मिलित विचार से अधिक लाभ होता है। सिंडिकेट के अनुकूल लोगों के इन विचारों में कुछ भूल है, यह कहते नहीं बनता और पूँजी लगानेवाले भी इससे प्रसन्न हों तो भी कुछ आश्चर्य नहीं है।

प्रस्तुत विषय में मजदूरों का संबंध रखनेवाली दो बातें हैं— अर्थात् मजदूरों को मिलनेवाली रोजाना मजदूरी और बाजार में मिलनेवाली कीमत—इनका विचार करना और बाकी है। सिंडिकेट की कृपा से कीमत कुछ थोड़ी बढ़ गई है परंतु उससे मजदूरों को कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती। क्योंकि ग्राहकों से अधिक मूल्य के रूप में लिया हुआ कर मजदूरों के हिस्से

में मजदूरी के रूप में आ जाता है। मजदूरी की बाबत अब पहले के समान अस्थिरता नहीं रही है। सिंडिकेट स्थापित होने के पहले मजदूरों की हाय हाय बहुत होती थी, परंतु अब हाय हाय दिनों दिन कम होती जाती है। सिंडिकेट स्थापित होने के कारण मजदूरी में स्थिरता आ गई है। इस कारण आज कम और कल ज्यादा आय हो इसका अवसर बहुधा कम आने पाता है। इतना होने पर भी आरंभ में सिंडिकेटवालों के विषय में मजदूरों का मत सशंकित था। वे समझते थे कि माल पैदा करने-वाले लोगों में ऊपरा-चढ़ी को कम करके यदि ये लोग माल का मूल्य बढ़ा सकते हैं तो मजदूरी देनेवाले लोगों में भी ऊपरा-चढ़ी के भाव को कम करके हमारी मजदूरी कम न करेंगे इसका क्या सबूत है ? इस प्रश्न का आरंभ में उनके मन में पैदा होना एक सहज बात थी। परंतु इस प्रकार की शंका करने का कोई विशेष कारण समझ में नहीं आता, क्योंकि कारखानेवालों के समान ही मजदूर लोगों में भी संघशक्ति उत्पन्न हो गई है और उस शक्ति के बल पर वे कितना कार्य कर सकते हैं, इसकी विवेचना पिछले अध्याय में की जा चुकी है। कुछ भी हो, परंतु सिंडिकेट द्वारा मज-दूरों का अहित अब तक नहीं हुआ। परंतु उनके द्वारा स्थापित ट्रेड यूनियनों के विषय में सिंडिकेटवालों ने जो आंदो-लन अनेक वार किए और जो प्रतिकूल विचार प्रगट किए इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान समय की स्थिति स्थिर बनी रहेगी अथवा नहीं ! हां, इतना कह सकते हैं कि यह आंदोलन अब तक स्थानीय रहा है। जिन लोगों ने

यह आंदोलन उठाया है उनमें हर किरडक नाम के एक पुरुष हैं जो यूनियनों के कट्टर शत्रु हैं और व्यापारी लोगों पर उनका बड़ा प्रभाव भी है। ट्रेड यूनियनों के विनाश का यदि उन्होंने पूर्ण निश्चय कर लिया है तो मजदूरदल के लोगों को उनका सामना करने में बहुत कठिनाई उपस्थित होगी।

सिंडिकेट स्थापित करने की युक्ति बहुजन समाज को कितनी पसंद है, और इस विषय में सरकार का क्या विचार है, इसका विचार करके यह विषय समाप्त किया जाता है।

यह युक्ति जिस समय पहले पहल सोची गई तब अनेक जर्मन विद्वानों ने इसे युक्तिसंगत समझा और यह स्थिर किया कि यदि यह युक्ति सफल हुई तो संपत्तिउत्पादन का काम विशेष प्रमाणबद्ध होगा, मूल्य को स्थिरता प्राप्त होगी और देश के व्यवसाय वाणिज्य का उत्कर्ष होगा। जर्मनी के लोहे का व्यापार सारे संसार में फैलना चाहिए, यह जर्मन लोगों की प्रबल इच्छा थी और यह इच्छा सिंडिकेट की सहायता से पूरी होगी, इस बात का उन्हें विश्वास होगया। सिंडिकेट स्थापित होने से देश का व्यापार खूब बढ़ेगा, मजदूरों को पेट के लिये विदेश जाना नहीं पड़ेगा। निर्गत व्यापार का जोर होगा ' बड़े और छोटे दोनों प्रकार के कारखानों को समान लाभ होगा। मजदूरों को अधिक मजदूरी मिलने लगेगी और इस कारण समय समय पर उनका आंदोलन बंद हो जायगा। इतना अधिक लाभ हो कर भी किसी दल विशेष की कुछ हानि न होगी, क्योंकि माल पैदा करने और बेचने की व्यवस्था में कम खर्च होने से पहले के मूल्य में फेर फार करने का अवसर

ही न आवेगा, इस प्रकार के अनुकूल उद्गार चारों ओर लोगों के मुँह से निकलने लगे थे ।

इस भविष्य में कुछ तो अनुभव से बिलकुल असत्य और कुछ अंशतः सच्चा भी निकला है । सिंडिकेट के स्वीकार किए हुए कुछ व्यवसायों में कई एक तो उत्तमता-पूर्वक चलते हैं, और उन व्यवसायों को संरक्षक-कर का जोर और भी मिल जाने से स्वदेश का बाजार सिंडिकेटवालों के हाथ में पूरे तौर पर आ गया है । निर्गत व्यापार बढ़ा है और मजदूरों का वेतन भी बढ़ा है । इतना होने पर भी सब व्यवसायों में उन्हें समान यश प्राप्त नहीं हुआ है । सिंडिकेट में सम्मिलित न होनेवाले छोटे छोटे व्यवसाय तो बिल्कुल नष्ट हो गए । निर्गत व्यापार बढ़ने से जिस व्यवसाय में सिंडिकेटवालों का जोर रहा उसी व्यवसाय में बिना सिंडिकेटवालों को हानि उठानी पड़ी और अंत में जिस प्रकार कारखानेवालों को नफा हुआ उसी प्रकार देश के ग्राहकों को नुकसान भी उठाना पड़ा । कारखानेवाले, व्यापारी और मजदूर, ये सब लोग ग्राहकों पर ही सवारी बाँधने लगे, इस कारण उनको बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा ।

अपने भविष्य को अनुभव से असत्य होते देखकर जो लेखक पहले सिंडिकेट का पक्ष लेकर बोलते थे उनमें से कुछ तो उनके ऊपर टूट पड़े और कहने लगे कि सरकार को इन पर बहुत कड़ी निगाह रखनी चाहिए, नहीं तो ये सिंडिकेटवाले ग्राहकों को लूट खाँयगे । परंतु यदि वास्तव में देखा जाय तो इस संस्था ने अब तक कानून के विरुद्ध कोई काम नहीं

किया, यह बात कोई भी निष्पक्षपाती मनुष्य स्वीकार कर लेगा। एक बार एक सिंडिकेट के विरुद्ध "इंपीरियल सुप्रीम कोर्ट" में एक दावा दायर किया गया, उस दावे में यह कहा गया कि सिंडिकेट द्वारा व्यापार में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को धक्का पहुँचता है। परंतु अदालत में यह बात प्रमाणित नहीं की जा सकी। अदालत ने अपने फैसले में वादी के विरुद्ध यह निश्चय किया कि अनिश्चित दशा में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मर्यादित करने से ही समाज का कल्याण होता है। "इंडस्ट्रियल कोड" में व्यवसाय की स्वतंत्रता (Freedom of occupation) यह शब्द आया हुआ है, इसी आधार पर उपरोक्त स्वरूप का दावा कोर्ट में किया गया था परंतु उसका परिणाम भी वही हुआ जो ऊपर बताया गया है। अतएव कानून के अनुसार मर्यादा के अंदर ही सिंडिकेटवालों को रहना चाहिए। यदि इसके आगे उन्होंने पैर बढ़ाया तो कानून द्वारा उसकी रोक होना जरूरी है, यह बात अब बहुत से लोग समझने लगे हैं। बहुत सी सिंडिकेटों ने लोकमत अपने विरुद्ध कर लिया है और यह बात वे जान गए हैं। अतएव विरुद्ध लोकमत को शांत करने के उद्देश्य से "कोल सिंडिकेट" के डायरेक्टरों ने प्रशियन सरकार से कुछ दिन पहले अपने में सम्मिलित होने के लिये विनय की थी। उन्होंने यह सोचा था कि यदि सरकार हममें शामिल हो जायगी तो हमारे काम पर वह अपनी देख रेख अर्थात निगरानी रक्खेगी। परंतु ऐसा होने के लिये अभी तक समय नहीं आया, यह कह कर सरकार ने डायरेक्टरों की विनय को अस्वीकार कर दिया।

सिंडिकेट के काम में हाथ डालने योग्य कानून सार्वभौम सरकार अथवा प्रांतिक सरकारों ने अभी तक नहीं बनाया। प्रशियन सरकार की तरह सार्वभौम सरकार सिंडिकेटवालों की दशा को देख रही है कि वे कहां तक जाते हैं। देश के मुख्य व्यवसायों पर सिंडिकेट का अब तक क्या प्रभाव पड़ा इसकी जाँच करने के लिये एक कमीशन बैठाया गया है और उस कमीशन का काम अब भी चल रहा है। परंतु सरकार ने लोगों को यह विश्वास दिला दिया है कि यदि सिंडिकेट मर्यादा के बाहर बर्ताव करने लगेगा तो कानून द्वारा तत्काल हम इसका प्रबंध कर देंगे। अतएव लोग यह जान गए हैं कि जिस समय सरकार को विश्वास होजायगा उसी दम सिंडिकेट के मुँह में काँटेदार लगाम लगा कर उसे पीछे घुमाने अथवा उसे रोक देने में सरकार कभी आगा पीछा नहीं करेगी। वेस्ट फेलिया में "कोल सिंडिकेट" के विरुद्ध लोग बहुत कुछ कटाक्ष करते हैं। कोयला नित्य के व्यवहार में आने के कारण सिंडिकेट के विचार पर ही गरीबों का हानि-लाभ अवलंबित है। अतएव सिंडिकेट के विरुद्ध जो लोगों का रोना चला है वह सिंडिकेट के व्यवहार पर ही बहुत कुछ अवलंबित है। इस रोने को सार्वभौम सरकार सुन रही है और समय आते ही उसके अपनी शांति को त्याग कर लोगों के संरक्षणार्थ आगे हो कर काम करने का पूरा पूरा संकेत है।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

सरकारी काम ।

रेलवे और नहरें ।

अपने देश की सांपत्तिक स्थिति किस प्रकार से सुधारी जा सकती है इसका विचार जर्मन लोग तीस चालीस वर्षों से कर रहे हैं । सरकार को अपने ऊपर कौन सा काम लेना चाहिए और निज के तौर पर लोग कौन सा काम हाथ में लें, इस विषय में निश्चित विचार अभी तक कोइ स्थिर नहीं हुए हैं; परंतु तो भी अपनी अपनी आसानी का ध्यान में रख कर सरकार और निज के तौर पर व्यक्ति विशेष ने उन कामों को अपने अपने हाथों में लिया और इससे जर्मनी को जैसा चाहिए वैसा लाभ भी हुआ । जर्मन राष्ट्र पुस्तकी ज्ञान में कुशल परंतु व्यावहारिक ज्ञान में कम है; इसके विपरीत बृटिश राष्ट्र व्यावहारिक ज्ञान में कुशल परंतु पुस्तकी ज्ञान में कम है, यह सर्व साधारण लोगों की राय है । तथापि व्यक्ति विषयक स्वार्थपरायणता के आडंबर रचने के तत्व को यदि किसी ने स्वीकार किया है तो व्यवहार कुशल बृटिश राष्ट्र ने ही किया है। जर्मनी ने इस आडंबर को नष्ट कर इस तत्व में जितना ग्राह्यांश था उतना ही ग्रहण किया और इसमें सहकार्य का महत्व कितना है, इसे भी अच्छी तरह

समझ कर उन्होंने स्वीकार किया। परंतु इससे अधिक आडं-
बर उन्होंने नहीं रचा। जिस समय अंगरेज लोग यह
कह रहे थे कि देश का व्यवसाय वाणिज्य सरकार अपने
हाथ में न ले उसी समय इसके विरुद्ध जर्मनी का कार्य चल
रहा था, अर्थात् सरकार को इस काम में जरूर हाथ डालना
चाहिए, यह उनका मत था। जर्मनी में बहुत समय तक एक-
तंत्री राज्य रहा और सारी शक्ति राजा के हाथ में थी। इस
कारण जनता के ये विचार थे कि जो काम आरंभ करना हो
उसे राजा को ही करना चाहिए। वर्तमान समय में जब
कि राज्यपद्धति में बहुत कुछ सुधार हो गया है जर्मनी
में राजा का महत्व कम नहीं हुआ है। जर्मन राज्यव्यवस्था
का यह पहलू देखने पर लोगों को यह सहज ही में मालूम
हो सकता है कि वर्तमान दशा में भी देश की सामाजिक
स्थिति सुधारने के काम में सरकार को आगे होने में कितनी
स्वाभाविक सरलता है।

जर्मन राष्ट्र ने राजा का महत्व बना रक्खा, इस कारण
सांपत्तिक विकास के लिये जो अवकाश मिला उसका उपयोग
करने में उस राष्ट्र को पराकाष्ठा की सहायता पहुँची। संपत्ति
उत्पादन करने का बहुत सा बोझ तो सरकार और म्युनिसि-
पलिटियों ने अपने ऊपर ले लिया और इस तरह निज का काम
करनेवालों को अपनी पूँजी दूसरे कामों में लगाने और उन
कामों में अपनी कुशलता दिखाने का अवसर अनायास ही
प्राप्त हो गया। सारे जन समूह के हिताहित के विषय में
सरकार की निरीक्षणता में काम होने के कारण जिस काम से

व्यक्तिगत लाभ होना संभव था उस काम में विशेष ध्यान देने का अवसर सहज ही प्राप्त हो गया। स्वयं सरकार ने अथवा सरकार की निगरानी में निजी कंपनियों द्वारा जो रेलवें खोली गई हैं उनका विस्तार ३१००० मील है। इन रेलों में ६० करोड़ पौंड धन लगा हुआ है। इनकी व्यवस्था के लिये न तो कोई डाइरेक्टरों का बोर्ड है, और न धन लगानेवाले लोगों की सहायता की आवश्यकता ही पाई जाती है और न हिस्सदारों (शेअर-होल्डर) की सभाएँ करने की जरूरत पड़ती है। सरकार द्वारा ही सब काम बिना किसी कठिनाई के सरलतापूर्वक चलता है। हिस्सेदार और डायरेक्टर वगैरह सब सर्वसाधारण की पूँजी से बनी हुई कंपनियों में होते हैं और सरकार ने जो व्यवसाय वाणिज्य अपने हाथ में नहीं लिए हैं उनमें वे अपनी करामात दिखाते हैं। इतना ही नहीं, जर्मनी के भिन्न भिन्न प्रांतों की जो आमदनी है उसका बहुत सा भाग सरकार द्वारा किफायत के साथ चलाए हुए व्यवसाय-वाणिज्य से प्राप्त होता है। प्रजा पर कर लगाने के प्रश्न पर विचार करते समय सरकार इस बात को ध्यान में रखती है और इस कारण कुछ प्रांतों में प्रति मनुष्य कर का भार हलका क्यों है, यह बात सहज ही ध्यान में आ जाती है। सन् १९०५ के जर्मन राष्ट्र का बजट देखने से यह पता चल जाता है कि कुल आदमनी में से ३१·२ सैंकड़ा आमदनी सरकारी कारखानों में होती है और सब प्रांतों को मिला कर यह आमदनी ६८ फी सदी पड़ती है। जर्मन राष्ट्र और राष्ट्रांतरगत सब प्रांतों में से सरकारी कारखानों की

आमदनी १४,५७,५०,००० पौंड है। साम्राज्य की आमदनी का द्वार डाक और तार, आलसेस-लोरेन की रेलवे, "इंपीरियल प्रिंटिंग वर्कस्" और "इंपीरियल बैंक" हैं। प्रांतों की आप रेलवे, डाक और तार, जंगल, जमीन, कोयला, लोहा, पोटॉश आदि की खानों और लोहा साफ करने के कारखानों से होती है। सन् १९०६ में केवल प्रशिया में ३९ खानें, १२ लोहा साफ करने के कारखानें, पांच नमक बनाने के कारखाने, तीन पत्थर की खानें और एक अंबर (Amber) का कारखाना सरकार के अधिकार में था।

पहले जमाने में जमीन की मालगुजारी ही सरकारी आमदनी का मुख्य द्वार थी, और यही दशा छोटे छोटे प्रांतों में अब भी पाई जाती है। बड़े बड़े प्रांतों में जमीन की मालगुजारी का स्थान रेल की आमदनी ने ग्रहण कर लिया है। इस काम में प्रशिया का नंबर सब प्रांतों से ऊँचा है। सरकारी खर्च रेलवे की आमदनी से जितना उस प्रांत में चलता है उतना और किसी प्रांत में नहीं चलता। प्रशियन लोगों को इसका पूरा पूरा भरोसा है कि सरकार के स्थापित किए कारखाने पूर्णावस्था को प्राप्त होंगे, और इस काम के लिये सरकार ने यदि कभी धन मांगा तो उसका जिक्र भी पार्लियामेंट (डाएट) में कभी नहीं किया जाता। प्रशिया का यह उदाहरण देख कर अन्य प्रांतों की प्रजा के मन में भी ऐसे ही भाव उत्पन्न होते जा रहे हैं। रेलवे अथवा अन्य प्रकार के कारखाने बिजली की शक्ति से चलाने के लिये पानी की शक्ति का उपयोग करने की कल्पना बवेरिया प्रांत में अभी हाल में

ही की गई है और इस काम को उत्तमतापूर्वक चलाने का प्रयत्न बवेरिया की सरकार कर रही है । प्रांतिक नदियों और नालों के पानी के उपरोक्त कामों के लिये उपयोग करने का अधिकार सरकार को पहले ही से है। इस पानी की शक्ति से बिजली उत्पन्न करके जहां आवश्यकता हो वहां उसे एकत्रित करके रखने का प्रयत्न वहां की सरकार अपार धन लगा कर कर रही है । साक्सेन सरकार ने भी इसी प्रकार की आयोजना अपने यहां की है। परंतु वहां का लोकमत, इस काम के लिये जितना अनुकूल होना चाहिए उतना अभी नहीं है ।

जंगलों और जमीन की मालगुजारी से भी प्रांतों को आमदनी होती है यह ऊपर कहा गया है । सरकार के अधिकार में बहुत सी जमीन होने से खेती के हानि लाभ पर उनका कल्याण अकल्याण निर्भर है। इस कारण बड़े और छोटे दोनों प्रकार के जमींदारों को अपने आश्रित समझ सरकार अपनी सम दृष्टि रख कर राष्ट्र को अधिक लाभ पहुँचा सकती है। परंतु प्रसिद्ध राजनीतज्ञ प्रिंस बिस्मार्क का विचार था कि प्रशियन राजनीतिज्ञों (मिनिस्टर आफ स्टेट) को जो वेतन सरकारी खजाने से दिया जाता है उसका कुछ भाग तो नकदी के रूप में दिया जाय और कुछ वेतन के बदले में जमीन दी जाय, और उस जमीन से अपने लिये वे जितना धन चाहें पैदा कर लें। इस सिद्धांत से राष्ट्र की मुख्य आमदनी का द्वार जो जमीन है उसकी दशा कैसी है, इस पर सरकार की दृष्टि रहेगी और उसका सुधार किन उपायों

से किया जा सकता और कौन सा मार्ग ग्रहण करना चाहिए, यह बात स्वतः के अनुभव से निश्चित की जा सकेगी। प्रत्येक प्रांत में बहुत सी जमीन सरकार के हाथ में है और उस जमीन की आमदनी सरकार को मिलती है। इस पर से यह कहा जा सकता है कि प्रिंस बिस्मार्क के उद्देश्य में चाहे कुछ रुकावटें मालूम हों परंतु वे साध्य अवश्य हैं, और इसी का अनुकरण करके सरकार दिनों दिन जमीन को अपने अधिकार में करती जा रही है। सरकारी जमीन को १८ वर्ष के लिये पट्टे पर देने का वहां पर नियम है और इस नियम के कारण सरकार को खेती की दशा दूसरे से जानने के बजाय स्वतः आप जान लेने का मार्ग उसके अपने हाथ में है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में जमीन की लगान की आमदनी में २५ से ३० फी सदी कमी हो गई थी। परंतु खेती की बुरी दशा क्यों हो गई, इसको जानने के लिये उस समय सरकार को कोई कमीशन नियत करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। स्वतः की जानकारी से ही सरकार ने यह जान लिया कि खेती के काम में कहां क्या त्रुटि है। सरकारी कृषि विभाग द्वारा सदा नए नए प्रयोग वहां होते रहते हैं और उनसे छोटे मोटे किसानों को बहुत लाभ पहुँचता रहता है। इसी प्रकार सरकारी जमीन में खेती उत्तमतापूर्वक होनी चाहिए इस प्रकार के कटाक्ष कृषि विभाग की ओर से होने पर उधर लोगों का ध्यान जाना एक सहज सी बात है। आसपास के खेतों में उत्तम फसल को देख कर सरकार के कृषि विभाग का ध्यान उस ओर जाता है। सरकारी कृषि विभाग द्वारा

उसको किसी प्रकार की हानि न होकर उल्टे सरकारी मालगुजारी की उन्नति का एक उत्तम साधन है। सरकार ने कृषि विभाग की स्थापना लोगों के लाभ के लिये की है, यह बात नहीं है। कृषि विभाग द्वारा सरकारी जंगलों और बाग बगीचों से जितना आमदनी बढ़ाई जा सके उतनी बढ़ाने का सरकारी अधिकारी प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार सरकारी आमदनी बढ़ कर देश की खेती का भी सुधार होता है और इस प्रकार इस सरकारी महकमे को दोहरा लाभ पहुँचता है। प्रशिया में जंगलों से बहुत बड़ा फायदा होता है। उसकी व्यवस्था के लिये सरकार ने एक स्वतंत्र महकमा ही बना लिया है। फारेस्ट्री की शिक्षा पास हुए लोगों को इस महकमें में जगह दी जाती है। इस महकमे की दशा इतनी अच्छी है और इससे वहां इतनी आमदनी हो जाती है कि कैसर के निज का आधा खर्च इस महकमें की आय से पूरा किया जाता है।

रेलवे की मालिक वहाँ सरकार है और उसकी सारी व्यवस्था भी उसीके हाथ में है। जर्मनी में रेलवे की व्यवस्था इतनी उत्तम है कि और कोई भी महकमा इतनी किफायत के साथ काम नहीं करता; यह अनुमान नहीं है अनुभव की बात है। परंतु जर्मनी की प्रचलित रेलवे व्यवस्था बहुत से अंगरेज लोगों को पसंद नहीं है। उनका विचार है कि रेलवे की व्यवस्था कंपनियों के हाथ में रहना ही सुखकारी है। परंतु यह विचार ठीक है या नहीं, इसके पीछे जर्मन लोग नहीं पड़ते। अनुभव से उन्होंने निश्चय किया है कि रेलवे

की व्यवस्था सरकार के हाथ में होने से उसमें बहुत कुछ सुधार हुआ है और रेलवे के नौकर अपना अपना काम बहुत आस्थापूर्वक करते हैं, इस कारण लोगों को भी सुख पहुँचता है और सरकार को भी अधिक लाभ होता है। सरकारी महत्व बढ़ाने का अवसर आने पर प्राशिया उसे फजूल जाने नहीं देता। सरकार के हाथ में रेलवे का काम शुरू होने पर सब से पहले प्राशिया ने ही नैतृत्व स्वीकार किया। सन् १८३८ में "प्राशियन रेलवे लॉ" नामका एक कानून सब से पहले पास हुआ। इंग्लैंड की रेलवे पद्धति का अनुकरण करके सर्वसाधारण के धन से कंपनियां बना कर रेलवे बनाने की उस कानून में पूरी पूरी स्वतंत्रता दी गई थी। परंतु इसी प्रकार की कंपनियों के काम पर सरकार सख्त नजर रक्खेगी, इस प्रकार का अधिकार सरकार ने अपने हाथ में रक्खा था और तीस वर्ष पश्चात् यदि सरकार उचित समझे तो इन रेलों को अपने अधिकार में ले सकेगी ऐसी भी कानून में व्यवस्था की गई थी। आरंभ में सरकार ने यह व्यवस्था तो की, परंतु शीघ्र ही इन कंपनियों के हाथ से रेलवे खरीद लेने का काम आरंभ कर दिया। कुछ कंपनियों को उधार रुपया दे कर सर्कार ने उसमें अपना पैर जमा दिया। इस प्रकार अब बहुत सी रेलवे प्राशिया में सरकार के हाथ में आ गई हैं और थोड़ी बहुत जो बाकी रह गई हैं उनपर भी सरकार की नजर है। साक्सेन, बवेरिया, बुर्टेवर्ग और वेडन प्रांतों ने भी प्राशिया का ही अनुकरण किया है। रेलवे की व्यवस्था सरकार के हाथ में होना सब प्रकार से हितकारी है, यह बात गत पचीस तीस

वर्ष में इतनी सर्वमान्य हो रही है कि अब इस विषय पर कोई भी जर्मनी से चर्चा भी नहीं करता कि सर्वसाधारण द्वारा स्थापित कंपनियों द्वारा रेलवे की व्यवस्था अच्छी है अथवा सरकार के हाथ में रेलवे होने से व्यवस्था अच्छी है।

सारे प्रांतों के ऊपर अधिक अधिकार चलाया जा सके, इस राजकीय उद्देश्य को आगे रख कर जर्मन साम्राज्य की स्थापना होने से प्रिंस बिस्मार्क का यह कथन था कि जर्मनी की सारी रेलवे जर्मन राष्ट्र की मिलकियत होनी चाहिए और इस काम में प्रशिया ने आगे हो कर अन्य प्रांतों के लिये उदाहरण दिखला दिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सन् १८७५ में उन्होंने प्रशियन पार्लियामेंट के सामने एक व्याख्यान दिया था और उस व्याख्यान में उन्होंने कहा था कि "प्रशिया को अपनी रेलवे का स्वत्व और अन्य सब प्रकार का अधिकार जर्मन साम्राज्य को अर्पण कर देना चाहिए।" इस भाषण पर रेडिकल पक्ष के सभासदों ने बहुत कुछ टीका टिप्पणियाँ की थीं परंतु उनसे कुछ लाभ न हुआ। प्रिंस बिस्मार्क का कथन सबों ने बहुमत से स्वीकार कर लिया। इस प्रकार प्रशियन पार्लियामेंट ने अपनी सारी रेलवे साम्राज्य सरकार के स्वाधीन कर दी। परंतु अन्य प्रांतों से इस काम में वैसी सहायता नहीं मिली जैसी प्रशिया से। इस कारण प्रिंस बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य सिद्ध न हो सका। प्रशिया के विषय में अन्य बहुत से प्रांतों को बहुत कुछ मत्सरता है। इसी कारण प्रशिया के अंगीकार किए हुए काम का तुरंत ही अन्य प्रांतों में हो जाना जरा कठिन काम है। रेलवे का स्वत्व उन उन प्रांतों

के पास और कुछ दिनों तक रहेगा, ऐसा रंग ढंग दिखाई पड़ता है, और यह वर्तमान समय के लोकमत से स्पष्ट जाना जाता है। बहुत से मालिकों की बहुत सी रेलवे होना, यह दशा व्यापारिक दृष्टि से हितकारी नहीं है, यह बात ध्यान में रख कर रेलवे की व्यवस्था में से कुछ व्यवस्था इस ढंग की रक्खी गई है कि उससे सारे साम्राज्य में समान नियमों का पालन हो सकता है और उन नियमों का पालन ध्यानपूर्वक सब प्रांतों को करना चाहिए। उदाहरणार्थ रेलवे से आने और जानेवाले माल के किराए का दर, तत्संबंधी नियम, टाइम टेबल और इसी प्रकार की अन्य छोटी छोटी बातों के बाबत सारे नियम साम्राज्य भर में समान हैं और इस अवस्था से व्यापार के काम में जो कठिनाइयां उपस्थित होने का भय था, वह बिलकुल नहीं रहा।

सन १९०५ के अंत में, जर्मन साम्राज्य भर में, ३४,१०५ मील रेलवे थी। इसमें से ३१,६११ मील भिन्न भिन्न प्रांतों की सरकारों की थी अथवा सर्वसाधारण द्वारा स्थापित कंपनियों की थी; जिनकी निगरानी सरकार स्वयं करती थी। बाकी २,५६४ मील रेलवे सर्वसाधारण के धन से बनाई गई थी और इसमें से भी १९८२ मील तो दूसरे दर्जे की थी। यदि हिसाब लगा कर देखा जाय तो पाया जायगा कि १०० वर्ग मील में २६२ मील और फी एक लाख आदमी पीछे ५६·७ मील रेलवे का परता पड़ता है और फी मील २१,३०० पौंड खर्च पड़ता है। इस प्रकार ७२,७६,००,००० पौंड मूल धन रेलवे में लगा हुआ था। उस साल रेलवे की आमदनी

१२,१८,५०,००० पौंड हुई थी और खर्च ७,७०,५०,००० पौंड हुआ था अर्थात् खालिस मुनाफा ४,४८,००,००० हुआ। इस तरह मूलधन पर प्रति वर्ष ६ पौंड ५ शिलिंग फी सदी व्याज पड़ता है। रेलवे में काम करनेवाले नौकरों की संख्या उस साल ६०,३,७५५ थी।

रेलवे की व्यवस्था सरकार के हाथ में होने से जो सब से बड़ी हानि होती है वह यह है कि सरकार अपनी आमदनी बढ़ाने का प्रयत्न जहाँ अपने सरकारी अन्य विभागों द्वारा करती है वहाँ रेलवे से भी आमदनी बढ़ाने का उसका प्रयत्न जारी रहता है। इस विषय में प्रशिया प्रांत सब से आगे है। प्रशियन सरकार को बहुत बड़ी आमदनी रेलवे से ही होती है। रेलवे की व्यवस्था के लिये अधिक धन खर्च करना अथवा लोगों को किराए में अधिक सहूलियतें देना, यह कभी सरकार स्वीकार नहीं करती और इस कारण व्यापारी लोगों में बहुत कुछ असंतोष उत्पन्न हो गया है। रेलवे की वर्तमान व्यवस्था बुरी है, ऐसा वे लोग नहीं कहते, उनका कथन इतना ही है कि जितना हो सके उतना ही धन बटोरने की सरकारी नीति सार्वजनिक कल्याण की दृष्टि से अच्छी नहीं है। एसन के चेंबर ऑफ कामर्स ने सन् १९०६ में इस विषय पर जो अपने विचार प्रकट किए थे, उनमें यह बात बताई गई थी कि "सरकारी आमदनी रेलवे की आमदनी पर अवलंबित होने के कारण सार्वजनिक हित को धक्का पहुँचता है। सरकारी आमदनी बढ़ाने की इच्छा होने

की ओर जितना जाना चाहिए उतना नहीं जाता, और इस कारण माल ले जाने में अधिक किराया लगने से कुछ सुभीता नहीं होता। यदि जनता की ओर से इस विषय में कुछ आंदोलन किया जाता है तो सरकार उस ओर उतना ध्यान नहीं देती जितना देना चाहिए, और किराए की दर प्राय: स्थिर कर दी गई है।" सन् १९०६ से प्रशियन पार्लियामेंट रेलवे विभाग की व्यवस्था को ध्यानपूर्वक देखने लगी है। कृषि और वाणिज्य की जितनी उन्नति हो सके उतनी करने के लिये रेलवे के झगड़े जितने कम करना संभव हों किए जावें, इस विषय का एक प्रस्ताव भी पार्लियामेंट ने पास कर दिया है परंतु उसका उपयोग में आना असंभव प्रतीत होता है। क्योंकि सरकार कहने लगती है कि रेलवे की आमदनी अवश्य हमें अधिक होती है परंतु हम भी तो प्रजा पर इसी कारण कर कम लगाते हैं। यदि कर कम वसूल होगा तो हमारी आमदनी कम हो जायगी और शिक्षा तथा इसी प्रकार के अन्य कामों में सरकार को अधिक खर्च करने की गुंजाइश न रहेगी। इस कारण सरकार जो कुछ कर रही है उसमें हस्तक्षेप करने का किसी को साहस नहीं होता और न ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार इस व्यवस्था में कुछ फेर फार करने को तैयार है।

सारे देश में रेलवे का जाल बिछ जाने के कारण देश में आने जाने अथवा माल लाने या भेजने में बहुत सुगमता हो गई है। इसी प्रकार नदियों से नहरें निकाल कर इस कार्य में और भी सरलता कर दी गई है। जर्मनी में ह्राइन,

एल्ब, ओडर, और वेसर नदियां दक्षिण से उत्तर को बहती हैं इस कारण पश्चिम और पूर्व प्रदेशों में माल ले जाने का कुछ भी उपयोग इन नदियों द्वारा नहीं होता। अल्म से लेकर वायना तक पूर्व की ओर बहनेवाली केवल एक नदी डैन्यूब है परंतु उसका भी दक्षिणी जर्मनी में थोड़ा सा ही उपयोग हो सकता है। यह दशा बहुत दिनों से सरकार के ध्यान में थी, और नहरों द्वारा व्यापार को अधिक लाभ होगा, यह भी वह जानती थी, और इसके लिये उसने कुछ नहरें भी पहले निकाली थीं। अब ह्राइन, एल्ब, एस, ओडर और विश्चुला आदि नदियों तथा इनकी शाखाओं के सम्मेलन से बनी हुई नहरें ही मुख्य हैं। ऊपर जिन नदियों के नाम बताए गए हैं, वे बहुत बड़ी हैं उनमें पानी भी बहुत है। इस कारण व्यापारी जहाज इन नदियों में आ जा सकते हैं। इन जहाजों के आने जाने की आसानी के लिये जहां पानी गहरा नहीं है वहां गहरा करने का प्रयत्न जारी है। इन नदियों की कुछ नहरें तो इतनी चौड़ी हैं कि उनमें छोटे छोटे जहाजों का आना जाना भी आसान हो गया है। देश में जलमार्ग का विस्तार शीघ्रता से हो जाने के कारण दूर दूर के प्रांत भी एक दूसरे के पास हो गए हैं।

नहरों के बनाने की ओर आजकल प्रशियन सरकार का ध्यान खूब लगा है। एक नहर ह्राइन नदी से डार्टमंड एम्स नहर तक, दूसरी वहीं से वेसर नदी तक, तीसरी वेसर से और चौथी बहुत गहरी बर्लिन से स्टेटिन तक निकाली गई है। इसके अलावा और भी छोटी छोटी नहरें निकालने के लिये

सरकार ने १९०५ से "क्यानल लॉ" पास कर दिया है। इस काम पर सरकार एक करोड़ साठ लाख पौंड खर्च करना चाहती है। दक्षिण प्रांत में नहरों का जाल ऐसा बिछा हुआ है और एक दूसरे से नहरें ऐसी जोड़ी गई हैं कि उत्तर प्रांत और बाल्टिक समुद्र तथा वायना और डैन्यूब नदी पर के अन्य शहरों के बीच में पानी के ऊपर से आने जाने का कार्य बड़ी सुगमता के साथ हो रहा है। ह्राइन अथवा एल्ब इन दो नदियों के किसी भी बंदर की अपेक्षा बर्लिन बंदर पर व्यापार बहुत अधिकता से होता है। बर्लिन राजधानी स्प्री नदी के किनारे बसी है। सन् १९०४ में २४,३०० जहाजों में ४० लाख टन माल स्प्री नदी पर से बर्लिन के बंदर में उतारा गया। यह सूचना सरकारी खोज से प्रकाशित हुई है। उस बंदर से स्प्री नदी के प्रवाह द्वारा नीचे जानेवाले माल की संख्या और भी अधिक है। दो सौ फुट से अधिक लंबे, २६ फुट चौड़े और ६०० टन माल ले जानेवाले जहाज, इस नदी से आ जा सकते हैं। इस से नदियाँ और नहरें व्यापारोन्नति के काम में कितनी उपयोगी साबित हो रही हैं, यह बात पाठकों के ध्यान में आ जायगी।

जर्मनी में जलमार्ग से देश के देश में ही होनेवाले व्यापार का इतिहास देखने से पाया जाता है कि उसकी गति आज तक कहीं भी रुकी नहीं है। परंतु ईश्वर निर्मित जल मार्ग से आने जाने के काम में हर एक को अधिकार प्राप्त नहीं है। यह बात अब प्राशियन सरकार कहने लगी है और इसी लिये साम्राज्यांतर्गत सारी नदियों पर कर बैठाया जाय,

ऐसी सूचना अन्य प्रांतों की सरकारों को प्रशियन सरकार ने दी है। यह सूचना भिन्न भिन्न मार्गों द्वारा अन्य प्रांतों तक पहुँचाई गई हैं। परंतु इस समय इन सूचनाओं पर प्रांतिक सरकारें विचार करेंगी, इसके कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ते; पर आगे चल कर इन सूचनाओं पर उन्हें विचार करना ही पड़ेगा। प्रशिया में कृषि प्रधान विभागों के आए हुए पार्लियामेंट के मेंबर लोग इस बात के विरुद्ध थे कि सरकार को नहरें बनाने का काम अपने हाथ में लेना चाहिए। परंतु अंत में अछता पछता कर वे इस पर राजी हो गए। हाँ, उन्होंने सरकार से भी यह बात स्वीकार करा ली कि जलमार्ग द्वारा होनेवाले व्यापार की आसानी के लिये नदियों और नहरों पर कर बैठाने का अधिकार हमें रहे। प्रशियन सरकार ने उनका यह कथन एक दम स्वीकार कर लिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस विषय में जर्मनी के अन्य प्रांतों का निकट संबंध तो है ही परंतु जर्मनी के पड़ोसी अन्य राष्ट्रों से भी इसका संबंध है। इस कारण उपरोक्त वचन देने के पहले अन्य राष्ट्रों और प्रांतों का इस विषय में क्या मत है, इसको जान लेने की प्रशियन सरकार को बहुत बड़ी आवश्यकता थी। परंतु यह न करके जो वचन प्रशियन सरकार ने दे दिया है उसे पूरा करने के लिये कृषकों की ओर के सभासद बराबर जोर दे रहे हैं। इस कारण प्रशियन सरकार ने उन अन्य प्रांतों और पड़ोसी राष्ट्रों से इस विषय में पत्रव्यवहार शुरू कर दिया है और इसका अंतिम परिणाम क्या होगा यह अभी से कहा नहीं जा सकता।

कर बैठाने का निश्चय प्रशियन सरकार ने एक दम कर लिया यह किसी विशेष कारण के बिना नहीं हो सकता। पहला कारण तो यह प्रतीत होता है कि जलमार्ग (नदियाँ) और लोहमार्ग (रेल गाड़ियों) के बीच बहुत कुछ ऊपरा चढ़ी हो रही है और इससे रेलवे की आमदनी कम हो जाने का बहुत कुछ भय लगा हुआ है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि जर्मनी के अंतःप्रदेश में जलमार्ग द्वारा विदेश से जो माल आता है, उसके न आने की इच्छा ही शायद इसकी जड़ में हो। किसान लोगों ने भी वाद विवाद के समय पर एक कारण बतलाया था। प्रशिया के "अपर हाउस" में किसानों की ओर से आंदोलन करनेवाले सभासदों में से एक सभासद ने निम्नलिखित विचार प्रगट किए थे—"यह कर लगाने से विदेश से अनाज का आना बंद हो जायगा और यह होना ही चाहिए. यह मैं स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ। कर की दर में उचित अंतर रखने से हमारे समान पूर्वी प्रशिया में अनाज पैदा करने-वाले लोगों को ह्राइन नदी के किनारे विदेशी अनाजवालों से ऊपरी चढ़ी करने में आसानी होगी।" इस सभासद के कथनानुसार कर लगाने पर यदि किसी को हानि होने की संभावना है तो वह अनाज बोनेवालों की है। यह बात उसके ध्यान में क्यों नहीं आई, यह समझ में नहीं आता! नदी के ऊपर चलनेवाले जहाजों के मालिक नवीन कर जितना लगावेंगे, उसी हिसाब से अपना किराया बढ़ाने में वे किसी प्रकार की कमी नहीं करेंगे। केवल पाश्चिमी

जर्मनी से जहां समुद्र का किनारा है विदेशी व्यापारियों को उस प्रांत से अनाज लाना बहुत आसान है। इस कारण, यदि उन्हें नया कर भी देना पड़ेगा तो भी उन्हें कोई कठिनता न मालूम होगी। यदि जर्मनी के पूर्वी भाग से आनेवाले अनाज पर ह्राइन और एल्ब नदियों पर अधिक किराया देना पड़ेगा तो यह बोझा देशी अनाजवालों को असह्य हुए बिना न रहेगा। तात्पर्य यह है कि नया कर लगाने से विदेशी अनाज के व्यापारियों को जर्मनी के बाजार से निकाला जा सकेगा, उस प्रांत के विद्वानों के ये विचार बिलकुल भ्रमात्मक हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रशियन सरकार ने जिस कर को बैठाने की व्यवस्था की है वह कर लगाया जा सकता है अथवा नहीं, यह प्रश्न पहले साम्राज्य व्यवस्था के नियमों के आधार से ही त्याग देना चाहिए और पश्चात् राष्ट्र राष्ट्र के इकरारनामों पर दृष्टि रख कर यह देखना चाहिए कि कर का लगाना उचित होगा या नहीं। राज्यव्यवस्था के नियमों में फेरफार करने के लिये जर्मनी के अन्य प्रांतों की संमति लेना प्रशियन सरकार को जरूरी है। परंतु इसके अलावा फ्रांस, हालैंड और आस्ट्रिया-हंगरी का मत भी इसमें अनुकूल होना चाहिए, क्योंकि १७ अक्तूबर सन १८१८ के "ह्राइन नेविगेशन" एक्ट नाम के कानून के अनुसार प्रशिया, बेडन, बवेरिया और हेसी आदि प्रांतों की ओर अधिकारियों की सहायता होने से फ्रांस और हालैंड भी इसी पक्ष में हैं। इसके अलावा "एल्ब नेविगेशन एक्ट" नाम का जो कानून बनाया गया है और

जिस कानून के आधार पर से ही एल्ब नदी हो कर जो चाहे वह अपने जहाजों को स्वाधीनता के साथ ले जा सकता है वह कानून आस्ट्रिया को भी पसंद है।

साम्राज्य-व्यवस्था के नियमानुसार कर बैठाया जा सकता है अथवा नहीं इस विषय में कानून जाननेवालों में मतभेद है। जर्मनी के कुछ प्रांत यदि इस काम के लिये अनुकूल हो जाँय तो क्या बाकी के प्रांत भी अपना मत अनुकूल प्रदर्शित करेंगे, इस बात का अभी कोई भरोसा नहीं है और न यह आशा की जा सकती है कि फ्रांस, हालैंड और आस्ट्रिया कभी इस बारे में अपनी अनुकूल सम्मति प्रगट करेंगे। इन सब कारणों से यह जाना जाता है कि प्रशिया की उद्देश्यपूर्ति में अनेक असुविधाएँ उपस्थित हैं। उन सब असुविधाओं को दूर कर के प्रशियन सरकार अपना उद्देश्य पूरा कर सकेगी अथवा नहीं, इस विषय की अधिक छानबीन करने की आज आवश्यकता नहीं है। प्रशिया ने जो प्रश्न उपस्थित किया है उसका स्वरूप क्या है, यहाँ पर केवल यही बात ध्यान में रखने योग्य है।

बारहवां अध्याय।

कृषि और वाणिज्य व्यवसाय।

हमारे के देश में ही अनेक ऐसे कार्य हैं जिनकी उन्नति की ओर जर्मन राष्ट्र का ध्यान लगा हुआ है। उन कार्यों में कृषि और वाणिज्य व्यवसाय मुख्य हैं। इन दोनों में किस प्रकार का संबंध होना चाहिए, यह प्रश्न बड़ा जटिल है और इन दोनों में अर्थात् कृषि और वाणिज्य व्यवसाय में कोई भी एक दूसरे का मारक न हो ऐसी व्यवस्था सरकार को करनी पड़ती है। यह घर का काम है परंतु है बड़ा नाजुक, क्योंकि व्यवसाय वाणिज्य की वृद्धि होने से खेती की अवनति होना एक सहज बात है। इसी प्रकार खेती की उन्नति के लिये कानून कायदे बनाने से वाणिज्य व्यवसाय की दशा में अंतर पड़ जाता है। केवल खेती या केवल व्यवसाय वाणिज्य का एक देशीय विचार यदि किसी ने किया तो दोनों का सांगोपांग विवेचन करना बहुत कठिन है और यदि सब प्रकार से उस पर विचार करना हो तो वह बिलकुल असंभव ही है, क्योंकि इनके सिवाय इन दोनों पर अवलंबित रहनेवाली राष्ट्रीय हिताहित की जो और बातें हैं उनकी ओर दुर्लक्ष्य होने की बहुत कुछ संभावना है।

जर्मनी के किसान लोग कहते हैं कि यदि भविष्यत् में

जर्मनी की सांपत्तिक उन्नति होगी तो हमारे द्वारा ही होगी। परंतु व्यवसाय वाणिज्याभिमानी लोग इसके विरुद्ध कहते हैं। इस प्रकार दोनों का वाद विवाद चल रहा है। जर्मन राष्ट्र के ये दोनों पलडे बराबर रहें, इस उद्देश्यपूर्ति के लिये साम्राज्य सरकार ने जो उपाय किए हैं, उन्हें कहाँ तक यश प्राप्त हुआ है, इसमें भी संदेह है। परंतु कृषि की उन्नति हो, इस उद्देश्य से उद्योग करना आवश्यक और बुद्धिमानी का काम है और इस विषय में किसी का मतभेद भी नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य जीवन की रक्षा करनेवाली खेती ही है और अब तक जर्मनी में कभी इसकी अवहेलना नहीं हुई। राष्ट्र का अभ्युदय और उसकी स्थिरता और उन्नति होने के जितने कारण हैं उन सबों में खेती मुख्य है। ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में सन १८८१ में प्रति दस हजार मनुष्यों के पीछे खेती करनेवाले ७११ मनुष्य थे और सन १९०१ में यह संख्या घटकर ४९५ रह गई अर्थात् प्रति सैकड़ा ३० के हिसाब से कमी हुई। परंतु जर्मनी में सन १८८२ में प्रति दस हजार में १७८३ मनुष्य कृषक थे और सन १८९५ में यह संख्या घट कर १५५४ रह गई अर्थात् प्रति सैकड़ा १३ की कमी हुई। सन १८९५ की मनुष्यगणना से पाया जाता है कि पाँच करोड़ बीस लाख मनुष्यों में से एक करोड़ अस्सी लाख लोग खेती और बाग बगीचे पर उदर निर्वाह करते थे और यदि जंगल भी इसमें शामिल कर लिए जाँय तो यह संख्या पाँच लाख और बढ़ जायगी।

अब आज कल, कुछ दिनों से, खेती की ओर कुछ कम

सहानुभूति दिखाई पड़ती है। संभव है इसका दोष कदाचित् किसानों के ही मत्थे मढ़ा जाय। अपनी आवश्यकताओं को जान कर, उनकी पूर्ति के लिये लोकमत जाग्रत करने का प्रयत्न व्यवसाय करनेवाले लोग बराबर करते हैं। परंतु इसके विपरीत राष्ट्रीय और प्रांतिक पार्लियामेंट में कृषकों की ओर के सभासद इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि प्रिंस बिस्मार्क ने जो राज्यव्यवस्था की नींव डाली थी, उसका प्रचार किया जाय। प्रिंस बिस्मार्क के समय में उद्योग युग का आरंभ नहीं हुआ था इस लिये जितना खेती का प्रसार किया जा सके उतना किया जाय, यह उनका मत था। परंतु गत तीस वर्षों में कितना सांपत्तिक सुधार हुआ है, इस महत्व की बात को ये सभासद गण ध्यान में नहीं लाते। इस कारण वर्तमान समय में भी प्राचीन काल के समान ही बने रहने का आग्रह करना अज्ञानमूलक है, इसमें संदेह नहीं है।

जर्मनी की वर्तमान दशा को देख कर, उसके विशिष्ट लक्षण क्या हैं और वे किस बात पर अवलंबित हैं इसकी खोज किए बिना, एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करनेवाले इन दोनों पक्षों के विवाद का निर्णय करते नहीं बनता; अतएव उसकी मीमांसा करना परमावश्यक है।

खेती पर उदर निर्वाह करनेवालों की संख्या दिनो दिन कम होती जाती है। ऐसी दशा में, खेती का सुधार करने का जो प्रांत प्रयत्न कर रहे हैं उनकी अवस्था वही है जो असाध्य रोगी की औषधोपचार करने से होती है, बहुत से लोगों की ऐसी राय है, परंतु यह उनकी भूल है, क्योंकि

जर्मनी में खेती की ऐसी बुरी दशा नहीं हो गई है जैसा वे लोग अनुमान करते हैं। जर्मनी के जमींदार बहुधा यह रोना रोया करते हैं कि हमारा उद्योग नष्ट हो रहा है, हमारी जीविका रसातल को चली जा रही है परंतु इस रोने धोने में सत्य की अपेक्षा हाय हाय ही बहुत है, क्योंकि उत्तरी और पूर्वी जर्मनी के बड़े बड़े प्रांतों में फसल पैदा करने योग्य अधिक जमीन मौजूद है इसलिये खेती कर के अधिक धन पैदा करनेवाले जमींदार यदि चाहें तो उन्हें अब भी वहाँ इस काम में सफलता प्राप्त करने की बहुत कुछ गुंजाइश है और जो लोग छोटे पैमाने पर खेती करते हैं, उनके लिये तो सारे देश भर में बहुत कुछ सहूलियतें मौजूद हैं।

खेती करनेवाले लोगों में कुछ लोग तो ऐसे हैं जिन्हें खेती पर बिना कारण ही प्रेम है। कृषकों के हिताहित के विचार से दया को सामने रख कर वे कुछ काम करते हों, यह बात नहीं है। परंतु ये लोग अपने तत्वज्ञान के घमंड में आ कर यह प्रतिपादन करने लगते हैं कि शहरों की जन-संख्या अधिक बढ़ जाने के कारण घनी वस्ती होने से शहर के निवासियों की शक्ति का ह्रास हो जाता है। परंतु देहात की आबोहवा शहरों से हजार दर्जा अच्छी है। इसलिये राष्ट्र की शक्ति शहर के निवासियों की बनिस्बत गाँववालों पर ही बहुत कुछ अवलंबित है। परंतु इस बात को जरा एक ओर रख कर जर्मनी के सर्व साधारण लोगों के स्वभाव की यदि परीक्षा की जाय तो उनमें एक प्रकार का गँवारपन पाया जायगा। इसी स्वभाव के अनुरूप नाटक, काव्य, उपन्यास

आदि में अनेक स्थलों पर इन कृषकों और इनके जीवन क्रम की स्तुति के स्तोत्र, उस देश के तत्व ज्ञानी कवियों और लेखकों द्वारा लिखे हुए ग्रंथों में पाए जाँयगे। कृषि कार्य में मनुष्य को प्राकृतिक सुख का इच्छापूर्वक अनुभव प्राप्त होता है। इसी कारण ऐसे मनुष्य शरीर से हृष्टपुष्ट, स्वभाव से दृढ़ और निश्चयी, व्यवहार में सच्चे, राष्ट्र हित के लिये तत्पर, नीतिमत्ता में श्रेष्ठ और धर्म पर श्रद्धा रखनेवाले होते हैं। इस प्रकार का वर्णन करनेवाले कितने ही कवि और ग्रंथकार वहां पाए जाते हैं।

जिन लोगों की मन की भावना का वर्णन ऊपर किया जा चुका है उन पर वाद विवाद करने की किसी की इच्छा नहीं है अथवा उन विचारों और उन विचारानुरूप उनके हाथ से होनेवाले कार्य की भी आलोचना करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर केवल इतना कहना ही काफी है कि वे ग्रंथकार गण जो यह कहते हैं कि नगर वासियों की हालत खराब है, सच बात नहीं कहते। जिस प्रकार प्रत्येक समाज सुधारक कुछ आधार न होते हुए भी केवल हित-संबंध अथवा आस्था दिखाने के लिये रोना धोना मचाते हैं उसी प्रकार नगर वासियों की सामाजिक अवनति के विषय में भी लोग कुछ न कुछ कहा करते हैं। परंतु यथार्थ में अब तक जर्मनी में उनकी हीन दशा नहीं हुई है। प्रोफेसर शेरिंग कृषि के बहुत बड़े अभिमानी पुरुष हैं। उन्होंने कुछ दिन पहले एक ऐसा सिद्धांत किया था कि सेना में भरती होने के लिये जितने आदमी कृषिजीवी मिलते हैं, उनके

एक तिहाई भी वाणिज्य व्यवसाय करनेवालों में से जो शहर के निवासी हैं, सेना के लिये नहीं मिलते। यह सिद्धांत सच है या झूठ, इस के विषय में अनेक वर्षों तक किसी ने जाँच नहीं की। बहुत वर्षों तक लोग इस सिद्धांत को सच ही समझते रहे परंतु सन १८९५ में बवेरियन सरकार ने भिन्न भिन्न स्थानों से इस बात की जाँच करने के लिये नकशे तैयार कर के मँगवाए तो उनसे मालूम हुआ कि प्रोफेसर साहब का सिद्धांत यथार्थ में कितना ठीक है और उसी समय से इस सिद्धांत की कलई लोगों के सामने खुल गई।

कृषक लोग सैनिक काम में कदाचित प्रवीण न होते हों तो भी इस विचार को एक ओर रख कर कृषि की दशा सुधारने के लिये और खास कर स्वतंत्रतापूर्वक जीविका निर्वाह करनेवाले लाखों किसानों की रक्षा कर के थोड़ी खेती करने की ओर उनका मन लगाने के उद्देश्य से सरकार का प्रयत्न करना उसका कर्तव्य है और ऐसा करने के लिये अनेक कारण भी मौजूद हैं। कृषि का सुधार करने से शहरों के कारखानों में काम करने के लिये लोग नहीं मिलते अथवा जिन्हें शहरों में रहने के लिये आराम का घर नहीं मिलता, वे खेती में जाते हैं, यह कभी नहीं होता। परंतु हां, जो गाँवों को छोड़ कर चले गए हैं अथवा जिन्हें शहरों की चटक मटक और ऐश आराम का व्यसन नहीं लगा है, उन्हें अपने अपने गाँवों में वापस जा कर खेतों में मेहनत करने की ओर ध्यान दिलाना जिससे वे पुनः जा कर खेती के काम में परिश्रम करने लगें, खेती के सुधार का मुख्य

उपाय है, और इसी प्रकार जमीन जोतने और बीजारोपण की वर्त्तमान प्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता है। इनके बिना कृषि से राष्ट्र के लोगों का उपयोग होना संभव नहीं है। यह सुधार धीरे धीरे हो तो भी काम चलेगा। परंतु इस काम में आज पद पद पर जो कठिनाई उपस्थित हो रही है वह इस काम के लिये अच्छे आदमियों का न मिलना है। इस कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न पहले होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर देखिए गरमी के दिनों में (Summer) फसल काटने का वक्त आने पर पूर्वी सरहद पर लाखों विदेशी लोग जर्मनी में आते हैं और फसल काट कर रोजी कमाते हैं। परंतु स्वयं जर्मनी में जर्मन लोग खेती के देश के छोड़ कर जिन प्रांतों में व्यवसाय वाणिज्य का काम होता है अथवा जहां आसानी से अधिक लाभ होने की आशा होती है वहां अपना घर बार त्याग कर अवश्य चले जाते हैं। उनके इस काम से कृषि को कितनी हानि पहुँचती है, इसकी कल्पना सहज में ही की जा सकती है।

सन् १८८३ से सन् १९०० तक कृषि विभाग ने जो अंक प्रकाशित किए हैं, उनको देखने से यह मालूम होता है कि उपर्युक्त हानि उठा कर भी खेती, बाग बगीचों, फल फूल तरकारियों, जंगलों और चरागाहों की आमदनी थोड़ी ही क्यों न हो पर बराबर बढ़ती हुई मालूम पड़ेगी, और उससे यह बात स्पष्ट ध्यान में आ जायगी कि देश के देश में ही लोगों को खेती द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार से कितना लाभ होता है।

देश में उत्पन्न होनेवाले अनाज से जितना काम चलना चाहिए उतना नहीं चलता। लोकसंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है, और लोगों के रहन सहन में भी पहले की अपेक्षा अब बहुत सुधार हुआ है। इस कारण उत्तम जाति का गेहूँ विदेश से देश में बहुत आने लगा है। गत आठ वर्षों से अनाज की आमद बहुत बढ़ गई है। परंतु तो भी जिस अनाज से गरीबों का निर्वाह होता है वह अब पहले की अपेक्षा अधिक पैदा होने लगा है। गरीबों के भोजन के लिये जर्मनी में जो अनाज पैदा होता है उसका नाम "राइ" (Rye) और हलके दर्जे का गेहूँ है। इनकी पैदावार काफी होती है। जिस हिसाब से अनाज अधिक पैदा होने लगा है उसी हिसाब से चराऊ जंगलों का उपयोग भी कृषि-काम के लिये अधिकता से होने लगा है। जिन मालिकों के पास बहुत सी जमीन है वे नई शास्त्रीय पद्धति से उसमें खेती करते हैं परंतु उन्हें अभी बहुत सी नई नई बातें सीखने की आवश्यकता है। खेती के काम में मजदूरी बढ़ती जा रही है इस कारण बहुत से स्थानों में यंत्रों की सहायता से काम होने लगा है। भाफ की शक्ति से चलनेवाले दो दो एंजनों के हल बहुत से किसानों ने खरीदे हैं। इन हलों की सहायता से रोज साढ़े बारह एकड़ भूमि जोती जा सकती है। पोटाश नामक द्रव्य का भी बतौर खाद के बहुत से लोग प्रयोग करने लगे हैं। इन सब कारणों से अब खेती की पैदावार पहले की अपेक्षा बढ़ती जा रही है।

कृषि के विकास का वर्णन यहीं पूरा नहीं होता। शराब

बनाने योग्य पदार्थों अथवा अन्य प्रकार के फलों के बागों, बियर शराब जिन फूलों में बनाते हैं उन फूलों की बेल "हाप" (Hop), आलू तथा अन्य प्रकार के अनाजों से शराब बनाने के कारखाने और "बीट" नामक वृक्ष की जड़ से शकर तैयार करने के कारखानों की ओर देखा जाय तो इनसे भी लाभ बढ़ता हुआ दिखाई पड़ेगा। इससे यह बात ध्यान में आ जाती है कि कृषि की उन्नति के उद्योग का कार्य कहां तक सफलतापूर्वक हो रहा है, और इसी के साथ यह भी मालूम हो जाता है कि आज जो संरक्षक कर लगा हुआ है वह वैसा ही बना रहे, यह जो लोगों का कहना है, वह किस उद्देश्य से है, इसका भी दिग्दर्शन हो जाता है। आनेवाले माल पर कर लगाने का उद्देश्य निश्चित करते समय, उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीस वर्षों में खेती की उपज का विशेष विचार क्या किया गया, यह बात जानने योग्य है। सन १८५० तक और उसके कुछ दिनों बाद भी खेती के काम में इतनी अधिक उन्नति थी कि किसानों के लाभार्थ संरक्षक कर यदि नियत किया जाता भी था तो भी वह नाम मात्र का होता था। इस कर लगाने की आवश्यकता नहीं थी यह बात सन् १८६५ में ध्यान में आई और उसी समय से वह कर उठा दिया गया। अपने देश में अपना कोई प्रतिस्पर्धी न हो, ये विचार उस समय किसान लोगों के ध्यान में बिलकुल न आते थे, क्योंकि उस समय जब उन्हें जरूरत होती वे अपने माल को बाहर ले जा कर उचित मूल्य पर बेच आ सकते थे। देश में अच्छी फसल

न पैदा होने पर भी गेहूं और राइ बहुतायत से इंग्लैंड को रवाना होता था। वर्षा कम होने पर भी जर्मन लोग इस अनाज को पसंद न करने के कारण अपना उदर निर्वाह मका पर करते थे, इस कारण देश में पड़े हुए अनाज को इंग्लैंड में अधिक मूल्य पर बेचने में सरलता होती थी।

अब यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो सकता है कि फ्रांस के साथ युद्ध का अंत होने पर उद्योग धंधों की जैसी उन्नति हुई वैसी कृषि की हुई अथवा नहीं ? इसका उत्तर यही है कि "हां, कुछ समय के लिये कृषि की खुब उन्नति हुई" परंतु वह कहां तक पहुँची ? "अनाज की कीमत जहां तक बढ़ सकती थी वहां तक।" परंतु यह कीमत बहुत दिनों तक न टिक सकी। हां, इससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि थोड़े समय में ही अधिक मूल्य पर जमीन बेंचकर अपना मूलधन बढ़ाने की प्रकृति लोगों में बढ़ गई। अनाज का भाव ऐसा ही चढ़ा रहेगा इस विचार से ग्राहकों की भी कमी न थी। बहुतों ने तो धन कर्ज लेकर जमीन मोल ली। परंतु शीघ्र ही जमीन का दाम धीरे धीरे उतरने लगा। अंत में भाव इतना गिर गया कि लोगों में अपना कर्जा अदा करने की चिंता उत्पन्न होगई और जिन्होंने अधिक जमीन मोल ली थी उन्हें इस व्यवसाय में अधिक चिंता उत्पन्न हुई। इसीमें और एक नया विघ्न उपस्थित हुआ। खेती का काम करनेवाले मजदूर लोग अधिक मजदूरी मांगने लगे, क्योंकि खेती का काम करनेवाले बहुत से मजदूर शहरों में जाकर कल कारखानों में काम करने लगे थे। इसके अतिरिक्त नवीन युग का आरंभ होने से पेट

भरने के लिये पहले समय की अपेक्षा अब अधिक धन की जरूरत पड़ने लगी। जो लोग अपना घर न छोड़कर गांव में ही बने रहे उनमें एक प्रकार की असंतुष्टता उत्पन्न हो गई। अनाज की पैदावार के काम में इतनी ही रुकावटें न पड़ीं बल्कि अब तक जो अनाज केवल रूस से आता था वह अमेरिका और अरजेंटाइन से भी आने लगा। इस कारण "राइ" नामक अनाज का भाव अब बहुत गिर गया। इन सब बातों का यह परिणाम हुआ कि किसी को भी राइ की फसल बोने में लाभ नहीं हुआ। तब सन् १८७५ के आरंभ में संरक्षक कर लगाने का आंदोलन आरंभ हुआ। प्रिंस बिस्मार्क ने पहले तो इस ओर ध्यान नहीं दिया परंतु सन १८७९ में इस आंदोलन की ओर लोगों ने उनका मन आकर्षित कर ही दिया और उन्होंने एक हंड्रेडवेट गेहूं अथवा राइ पर ६ पेंस संरक्षक कर लगा दिया।

उस समय तक देश में पैदा हुआ अनाज ही जर्मन लोगों का पेट भरता था, इतना ही नहीं वरन आवश्यकता पड़ने पर विदेश भी अनाज भेजा जाता था। परंतु यह अवस्था बहुत जल्द बदल गई। सत्तर के साल में व्यवसाय वाणिज्य का आरंभ होकर सारे राष्ट्र भर में उसका जाल फैल गया। व्यवसाय वाणिज्य की बढ़ती के साथ ही शहरों में रहनेवाले श्रमजीवियों की संख्या भी बेतहाशा बढ़ने लगी और इन लोगों को अपनी पेटपूजा के निमित्त अधिक अनाज की आवश्यकता होने लगी और इसके लिये उनके पास काफी धन भी मौजूद था। कृषि-प्रधान प्रांतों से लोग खेती का काम छोड़ छोड़ कर शहरों में व्यवसाय संबंधी कार्यों में

अपने को लगाकर खेती की अपेक्षा अधिक धन पैदा करने लगे। इस कारण कृषि में मजदूरी का भाव उन प्रांतों में जहां सदा से ही बहुत कम था वहां भी खूब बढ़ गया।

सन् १८७० तक जर्मन लोग संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रेजिल, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों को स्वदेश में काम न मिलने के कारण अपना पेट भरने के लिये जाते थे। परंतु इसके पश्चात् अपना देश छोड़ कर विदेश जाने की आवश्यकता ही उन्हें न रही। भिन्न भिन्न प्रकार की खानों, कल कारखानों, कलाभवनों में जितने मजदूर हों, उतनों को काम मिलने लगा। परंतु इतने में ही मालिकों की तृप्ति नहीं हुई। "और भी मजदूर चाहिएँ" ऐसा वे लोग पुकार पुकार कर कहने लगे। सन् १८९० में तो नौबत यहां तक पहुँची कि अपना देश छोड़ कर विदेश जाने की कोई भी इच्छा न करता। कुछ लोग जाते अवश्य थे परंतु उनकी संख्या दिनों दिन कम होती गई और अब तो बहुत ही थोड़े लोग विदेश जाते हैं।

इतना होने पर भी पच्चीस क्यों बीस वर्ष पहले ही कृषि और व्यवसाय में आनेवाले विरोध का कोई चिह्न भी दिखाई नहीं पड़ता था। पीछे जिस छोटे से कर लगाने का उल्लेख हुआ है उसके लगाने से भी अनाज के भाव में कुछ बहुत सा अंतर नहीं पड़ा। कारखाने के मालिकों को पहले के समान ही, जितने मजदूर चाहिएँ उतने मिल जाते थे। उन्हें मजदूरी अधिक देनी पड़ती थी, यह सच है; परंतु आज कल जो मजदूरी देनी पड़ती है उसकी अपेक्षा

वह बहुत कम थी। देश में राज्य-व्यवस्था का काम जिस तत्व पर चलता था, उसमें भी कुछ अंतर न पड़ा था, क्योंकि इस तत्व का मुख्य भाव यह था कि जर्मनी का जो मुख्य उद्योग, व्यवसाय, कृषि-कार्य है, और वह पूर्व काल से जैसा अबाधित चला आ रहा है, वैसा ही भविष्यत् में सदा चला जाना चाहिए; जिससे जमींदार और किसान सुसंपन्न बने रहें। मंत्री और पार्लियामेंट दोनों, इसे अपना पहला कर्तव्य समझते थे। सन् १८९५ में व्यावसायिक मनुष्य गणना का काम हुआ, उससे यह जाना जाता है कि सन् १८८२ में कृषि के ऊपर जितने लोगों का जीवन निर्वाह होता था उतनों का सन् १८९५ में नहीं होता था। परंतु यह कमी विशेष ध्यान देने योग्य न थी क्योंकि इसके विपरीत उन दिनों में भेड़ बकरी पालने का व्यवसाय ज़ोरों पर था और इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्र की अंतरव्यवस्था की मूल जड़ जो कृषि है उसकी अच्छी दशा में किसी प्रकार का धक्का नहीं लगा, तो भी व्यवसाय वाणिज्य की उन्नति खूब हो रही थी। परंतु इसके पश्चात् कृषि पर दोहरा वार पड़ने लगा। शहरों में कारखानें-वालों की प्रतिस्पर्धा के कारण मज़दूरों का अकाल पड़ने लगा और अनाज पैदा करने का खर्चा बढ़ गया। यह एक वार था। दूसरा वार अनाज के भाव में कमी थी जो बराबर उतरता ही चला गया। सन् १८८० से १८८९ तक गेहूँ और राइ के भाव की ओर यदि देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि इनका भाव कितना कम हो गया था।

कृषकों की दुर्दशा का यहीं अंत नहीं हो गया। जर्मन कारखानों में तैयार हुआ माल कसरत से विदेश जाने लगा और उसके बदले में बहुतायत के साथ अनाज विदेश से आने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि कारखानों की बढ़ती के साथ शहरों में मजदूरों की जो संख्या बढ़ गई थी, उसका पेट भरने के लिये बाहर ही बाहर विदेश से अनाज आकर काम निकलने लगा। कृषि-अभिमानी प्रिंस बिस्मार्क की जगह कौंट वान कप्रिवी जर्मनी के महामंत्री हुए। उन्होंने कानून के उद्देश्य को ही बिलकुल बदल दिया। इस कारण कृषकों को और भी अधिक मुसीबत का सामना करना पड़ा। कृषकों की दशा अच्छी होने से राष्ट्र की दशा अपने आप अच्छी हो जाती है, यही प्रिंस बिस्मार्क का दृढ़ निश्चय था, और इसी निश्चय के अनुसार वे कानून कायदों को बनाते थे। कौंट वान काप्रिवी के चांसेलर होते ही सारा रंग बदल गया। जर्मनी को कृषि प्रधान देश समझ कर कृषि के कल्याणार्थ कानून बनाना भूल है, संपत्ति उत्पादन के नए नए मार्ग जो अब खुल रहे हैं उनकी ओर ध्यान देना भी जरूरी है, कृषि का पालन पोषण करना जितना आवश्यक है उतना ही इन नए मार्गों के बीच में जो विघ्न आते हैं उन्हें दूर करना आवश्यक है इस प्रधान मंत्री ने अपनी यही राय स्थिर की। उनकी इस राय के अनुसार जब कानून कायदों का स्वरूप भी बदलने लगा तब व्यवसाय वाणिज्य और कृषि में तीव्र विरोध उत्पन्न हुआ और धीरे धीरे यह विरोध सबके ध्यान में आ गया।

कृषि का सुधार करने के लिये संरक्षक कर किस प्रकार लगाया गया, इसका इतिहास इस पुस्तक में देने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। इसी प्रकार कर लगाने के विषय में जो अनेक वादग्रस्त प्रश्न थे, उनका विचार करने की भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि सांपत्तिक दृष्टि से जर्मन राष्ट्र की आज कल क्या दशा है केवल इसी बात का स्थूल दृष्टि से इस जगह विचार करना है। तथापि इस विषय में दो प्रश्न ऐसे हैं कि जिनपर थोड़ा बहुत विचार करने से पाठकों के ध्यान में और भी अनेक बातें आ जाँयगी। ये प्रश्न देखने में तो भिन्न भिन्न हैं परंतु उनका स्वरूप एक ही है। वे प्रश्न ये हैं—(१) जर्मन लोग अपने आवश्यकतानुसार जर्मनी में ही अनाज पैदा कर सकते हैं या नहीं ? और (२) यह उद्देश्य आज कल के प्रचलित कानून द्वारा कितना साध्य हो सकता है ? जर्मनी में आज कल खेती नवीन पद्धति से होने लगी है, परंतु जनसंख्या बढ़ जाने के कारण और लोगों की रहन सहन जरा ऊँचे दर्जे की हो जाने के कारण जितने अनाज की लोगों को आवश्यकता है उतना अनाज लोगों को नहीं मिलता। अतएव यह दशा कैसे सुधारी जा सकती है, यह महत्त्व का प्रश्न जर्मन राष्ट्र के सामने है। इस प्रश्न का विचार करनेवाले लोगों में नाना प्रकार की बातें होती हैं परंतु इस गड़बड़ी में पाठकों को ले जाकर उनका समय नष्ट करना हम नहीं चाहते। उनके कहने का सार क्या है केवल यही हम यहां पर देना चाहते हैं।

कृषि की उन्नति होकर उसकी स्थिरता कैसी होगी, इस

विषय पर जर्मनी में बहुत समय तक विचार करने की जरूरत है। इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये कौन सा उत्तम उपाय है, इस काम में सरकारी मदद कितनी और कैसे प्राप्त की जा सकती है, इस बारे में उन लोगों का बहुत कुछ मतभेद हैं। इस बात में एक मत होना बहुत कठिन काम है। कृषि-अभिमानी लोगों का कहना है कि जर्मनी के अनाज का बाजार जर्मन लोगों के ही हाथ में रहने की व्यवस्था सरकार को कर देनी चाहिए। रेडिकल पक्ष के लोगों का कथन है कि जर्मनी के बड़े बड़े टुकड़ों को तोड़कर छोटे छोटे खेत बनाने की व्यवस्था जितनी सरकार कर सके उतनी उसे कर देनी चाहिए। मतभेद का यह एक उदाहरण है जो ऊपर दिया गया है। परंतु यह और इसी प्रकार के और बहुत से मतभेद हैं जिनकी ओर ध्यान न देना ही अच्छा है, क्योंकि कृषि-व्यवसाय का मनुष्य के जीवन से निकट संबंध होने के कारण उस व्यवसाय की ओर सरकार के पूरा पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता है। जिसे जो व्यवसाय रुचिकर हो उसे वही व्यवसाय करना चाहिए. अब पहले समय की उदासीन वृत्ति को स्वीकार करके चलने से काम नहीं चलेगा, इस मुख्य तत्व के विषय में अब कुछ भी मत भेद नहीं है। मतभेद है तो केवल ऊपर वर्णित उपाय योजना की बाबत है। केवल राजनैतिक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह कहा जायगा कि विदेशी अनाज पर अवलंबित रहना जर्मन राष्ट्र के लिये बहुत धोखे का काम है। यह बात प्रत्येक जिम्मेदार राजनीतज्ञ को ध्यान में रखनी चाहिए।

ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्य ने कृषि का ह्रास होने दिया, यह बहुत दुःख बात की है। परंतु समुद्र द्वारा वाणिज्य का मार्ग खुला रखने की शक्ति इंग्लैंड के बलशाली नौसेना विभाग में होने के कारण वहां के लोगों को अनाज बहुतायत से मिलता रहता है परंतु जर्मनी में यह शक्ति नहीं है और उत्तर तथा पूर्व की ओर अनाज पैदा करने योग्य उत्तम जमीन बहुत होने के कारण देश-कल्याण के उद्देश्य से इस ओर सरकार के ध्यान के विशेष रूप से जाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है, यह बात बिलकुल निर्विवाद है। यह बात कट्टर संरक्षण नीतिवालों को जितनी स्वीकार है उतनी ही कौंट वान काप्रिवी को स्वीकार है। पुरुष के व्यवसाय वाणिज्य का पूर्णाभिमानी होने के कारण, व्यवसाय वाणिज्य ही राष्ट्र का मुख्य जीवन है, यह उसका दृढ़ निश्चय था। परंतु तो भी मजदूरों को सस्ता अनाज मिलना चाहिए यह बात उसको स्वीकार थी और इसी कारण ऊपर जो कहा गया उसके अनुकूल उसने अपना मत बना लिया था। सन् १८९१ में राइश्टाग में उन्होंने एक बार यह कहा था—"दूसरे राष्ट्रों के साथ युद्ध करने का प्रसंग यदि जर्मनी को आया तो उस समय अनाज के लिये बाहरी लोगों का मुँह ताकना न पड़े, इस कारण स्वदेश में ही खेती का जितना सुधार किया जा सके उतना करने का यत्न करना चाहिए। भविष्यत् में होनेवाले युद्ध में सेना अथवा अन्य लोगों के काम में आने योग्य अनाज देश में पैदा किया जा सकता है अथवा नहीं, इस बात पर ही जय पराजय का निर्णय होगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।"

बर्त्तमान विषय के इस प्रश्न पर ही संरक्षण कर के पक्ष-पातियों का यह मत है। व्यवसाय वाणिज्य की उन्नति के साथ साथ देश में अनाज संग्रह की भी वृद्धि होनी चाहिए। अनाज के लिये परावलंबी बनना हानिकारक है। एक देश से दूसरे देश में जानेवाले माल का बदला धन से न होकर माल के रूप में होता है और जर्मनी सरीखे देश में यह बदला खास करके कच्चे माल और अनाज के रूप में जाना अनिवार्य है। इस पद्धति से जर्मन माल का क्रय विक्रय तभी तक चल सकता है जब तक जल मार्ग सब राष्ट्रों के व्यापार के लिये खुला है—सारांश, जब तक युद्ध का प्रसंग नहीं आया, तब तक जर्मनी की गाड़ी अच्छी तरह चली जायगी परंतु युद्ध आरंभ होते ही यह दशा बदल जायगी। संरक्षण नीति के पक्षपातियों का यह भी कहना है कि स्वदेशी कार-खानों को स्वदेश के बाजार में ही प्रतिस्पर्धा नहीं करनी चाहिए। इसीके साथ स्वदेश में अनाज इतना पैदा होना चाहिए कि विदेश से अनाज आने के बदले उन देशों में जर्मनी अपने यहां से अनाज भेज सके। और राष्ट्रों में बदला करने के लिये जितना माल भेजने की आवश्यकता हो उतना ही भेजना चाहिए, अधिक नहीं। संरक्षण पक्षवालों का यह कथन व्यावहारिक दृष्टि से ही निरूपयोगी नहीं है वरन कृषकों को भी उनका यह सिद्धांत स्वीकार नहीं है। स्वतः का संरक्षण करने के लिये विदेशी अनाज पर कर बैठाना, इतनी बात उनको स्वीकार करने योग्य है। परंतु विदेश में अनाज भेज कर यदि वहां अच्छा दाम मिलता हो

तो भी वहां न बेचना, यह बात न्यायसंगत नहीं है । वर्त्तमान इंपीरियल चांसलर वान ब्यूलो को यह बात पसंद है। उन्होंन सन् १९०६ से विदेश में आनेवाले अनाज पर संरक्षक कर तो लगा दिया है परंतु स्वदेश से विदेश जानेवाले अनाज के लिये किसी प्रकार का नियम नहीं बनाया। कृषि की रक्षा के लिये उन्होंने जैसा संरक्षण कर लगाया है उसी प्रकार व्यवसाय वाणिज्य की रक्षा के लिये संरक्षक कर कायम रक्खा है। इस प्रकार दोनों का हित साधन करने की ओर उन्होंने अपना ध्यान रक्खा, और बहुत करके उनका यह कार्य उचित हुआ है, क्योंकि व्यवसाय वाणिज्य के समान ही कृषि की रक्षा करनी चाहिए। यदि व्यवसाय वाणिज्य की रक्षा न की जाय तो खेती भी करने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार ये दोनों बातें एक दूसरे पर अवलंबित है। अनाज का दाम संरक्षण नीति द्वारा कर लगान से बढ़ता है अर्थात् ग्राहकों पर उसका बोझा पड़ता है और बोझा अंत में कारखानेवालों पर जाकर पड़ता है क्योंकि उन्हें अधिक मजदूरी देना पड़ती है। आज कल कुछ व्यवसाय ऐसे हैं कि यदि अनाज पर का संरक्षक कर उठा दिया जाय और विदेश में जितना जा सके उतना अनाज जाने दिया जाय तो उनके लिये संरक्षक कर की आवश्यकता प्रतीत न होगी। परंतु यह हो कैसे ? वर्त्तमान समय में अनाज के अनियंत्रित व्यापार तत्व को काम में लाना बड़े साहस का कार्य है। अतएव इस प्रकार कार्य करने का विचार किसी के मन में उत्पन्न हो नहीं सकता।

इसीके साथ व्यवसाय-वाणिज्यवालों की कृषि के विरुद्ध सदा यह तकरार रहती है कि "कुछ तुमको और कुछ मुझ को" इस तत्व पर जमींदार लोग कभी तैयार नहीं होते। सरकार जो कानून कायदे बनावे उनमें अपना जितना लाभ हो उतना अच्छा और फिर यदि दूसरों को कुछ लाभ पहुँच जाय तो कुछ हानि नहीं, उनका सदा यह ध्यान बना रहता है। "अग्रेरियन लीग" के समान संस्था का काम जैसे चलता है, यदि यह बात देखी जाय तो उपरोक्त कथन में कितनी सचाई है, यह बात ध्यान में सहज ही आ सकती है। उस संस्था का यह उद्देश्य स्पष्ट है कि कृषि के व्यवसाय वाणिज्य की ओर जर्मनी में जो प्रवाह बह रहा है उसे किसी न किसी उपाय से प्रत्येक स्थान में रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। इस काम में "कंसरवेटिव" पक्ष के लोगों के अनुकूल होने के कारण, राजनैतिक दृष्टि से भी "लीग" को बहुत महत्व प्राप्त हो गया है। इन सब कारणों से दुलारे लड़के का हठ बाप जैसे पूरा करता है इसी प्रकार सरकार भी इन लोगों का हठ पूरा करने को तैयार रहती है।

Printed by G. K. Gurjar at the Shree Lakshmi Narayan Press, Jatanbar, Benares City.

मनोरंजन पुस्तकमाला ।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा ।
(५) ,, २ ,, ,,
(६) ,, ३ ,, ,,
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए. ।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल. टी. ।
(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय ।
(१२) कबीरबचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी. ए. ।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा ।